卐 ओ३म् 卐

जन ज्ञान

मासिक

जुलाई : १९७६

श्रावण : २०३३

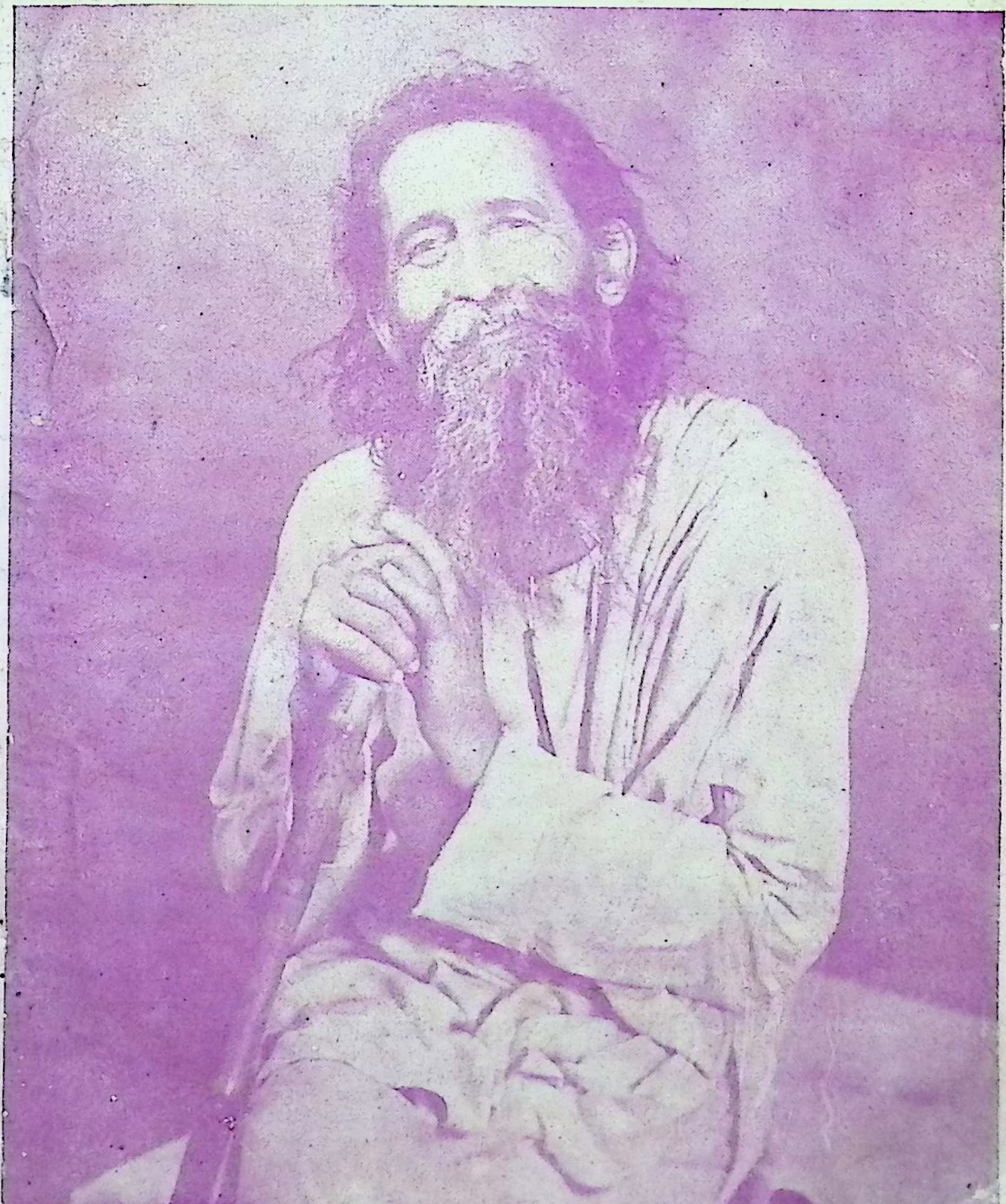

स्व० महात्मा आनन्द भिक्षु जी

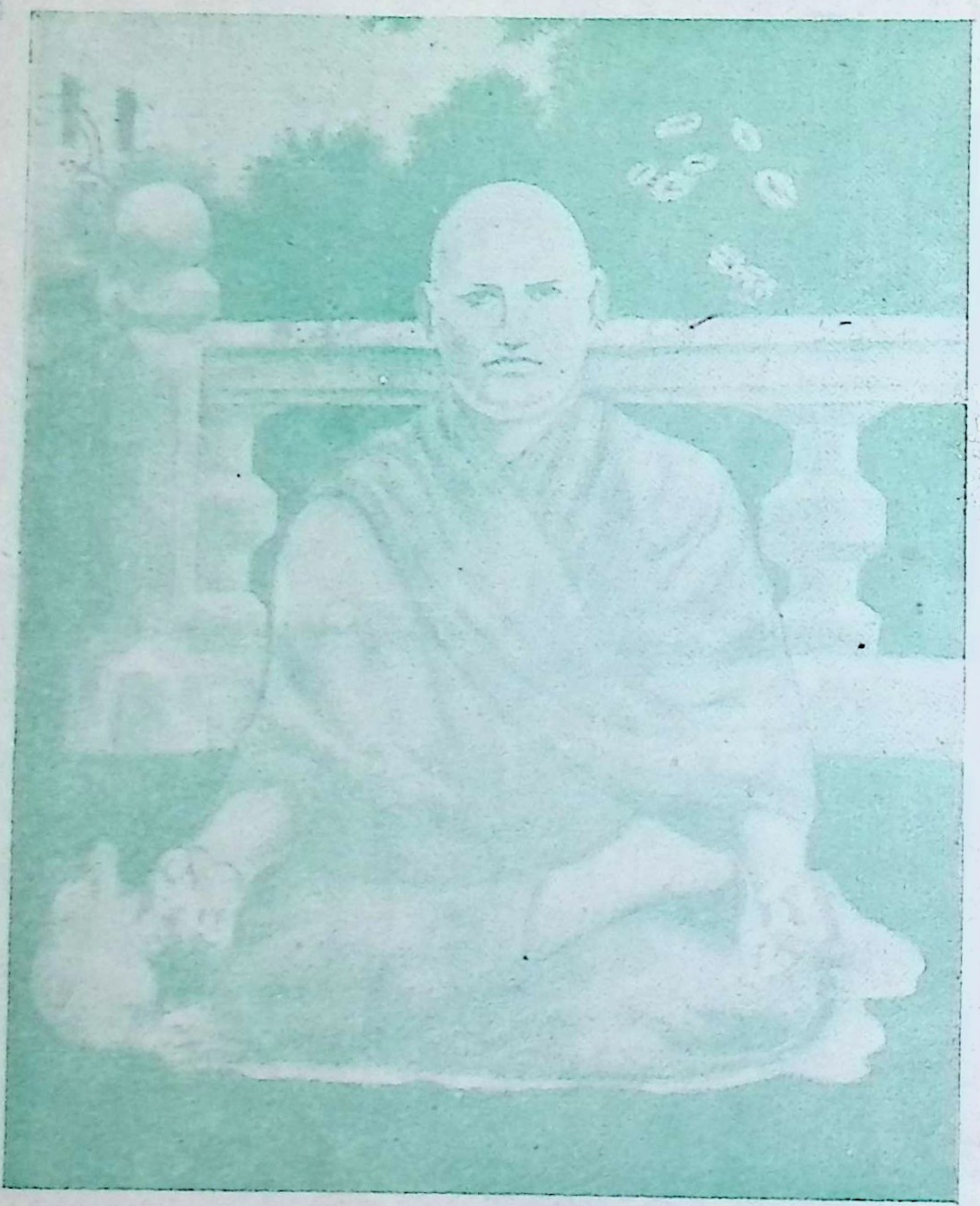

महर्षि दयानन्द का एक दुर्लभ चित्र
(जिसे स्वामी ओमानन्द जी ने खोजा है)

सम्पादक राकेश रानी द्वारा सैनी प्रिंटर्स दिल्ली में छपा

ओ३म्

दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली का प्रकाशन

जन - ज्ञान

मासिक

संपादक
राकेश रानी
सह-संपादक
सुमेधा स्नातिका
दूरभाष : ५६६६३९

पता
१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग
[निकट ३१ नाईवाला]
करोल बाग, नई दिल्ली
११०००५

वार्षिक मूल्य १५)
विदेश में ३ पौंड
(हवाई डाक से)
२ पौंड : समुद्री डाक से
(आजीवन २५१)
वर्ष ७ : अंक ३
श्रावण संवत् २०३३
जौलाई १९७६

सबको पवित्र कर दो, नाथ!

तुम, अग्नि पुंज, ज्योतिर्मय, सर्व साधन युक्त अनन्त ज्ञान के भंडार और अशरण शरण दिव्य साधना से युक्त हो !

तुम, ब्रह्मांड के नियन्ता, खगोल के सृष्टा, कर्ता धर्ता और सब कुछ जानने में सक्षम सब के स्वामी हो !

तुम हो मेरे मन के गीतों के अमर गायक, प्राणों के स्पंदन के प्रेरक, आशा के उद्दाम गायक और मेरी साधना के प्राण……

तुम से दूर रहकर किसी को कब शांति मिली है, किसने कब जीवन पाया है, धरती का रहस्य; साधना की मंजिल को कौन जान पाया है, मेरे प्रियतम !

तुम्हारे पास रहकर, जो पाया है वह किसी को बता भी तो नहीं सकता ? तुम्हारी किरणों की झंकार किसी को सुना भी तो नहीं सकता, तुम को जानकर कुछ और जानने को रह भी तो नहीं जाता। यह तथ्य है, सत्य है, किन्तु इस सत्य की विस्मृति ही आज का विचित्र सत्य है।

मेरे प्राण ! तुम्हारे सिवा मेरा और कौन है, कौन है वह जो मेरे मन तारों की झंकार के अर्थों को समझ सकेगा, कौन पीड़ा समझेगा, किसे पता है मेरी भावना का—

तुम बस केवल तुम हो, जिसके बल से मैं बली हूँ, जिसने भटकन में राह दिखाई है, और दिया है, सहारा, इसीलिए तो मैंने सदा निर्जन में भी तुम्हारे ही गीत गाए हैं।

ओ मेरे भगवान !

आज भी डगमग नौका की पतवार तुम्हारे हाथों में सौंपकर मैं निश्चित हो गया हूँ। मेरे पास अब अपना कुछ भी तो नहीं है, सब तुम्हारे हाथ में है बस इच्छा केवल यही है, कि कभी अपने से दूर न करना।

—भारतेन्द्र नाथ

ऋषि दयानन्द का संदेश गुंजाने के लिए
संस्थान को शक्तिशाली बनाने के लिए

दयानन्द संस्थान
के
सदस्य बनिए

★ ★ ★

आपकी जैसी स्थिति हो, श्रद्धा हो उसके अनुसार आप संस्थान के सदस्य बनिए। वर्ष श्रावणी से श्रावणी तक माना जाएगा—

संस्थान के सदस्य

१. १००१ रु० प्रति वर्ष देने वाले 'संरक्षक सदस्य'
२. ५०१ रु० प्रति वर्ष देने वाले 'पोषक सदस्य'
३. १०१ रु० प्रति वर्ष देने वाले 'संचालक सदस्य'
४. ५१ रु० प्रति वर्ष देने वाले 'दाता सदस्य'
५. २५ रु० प्रति वर्ष देने वाले 'सहायक सदस्य'
६. ११ रु० प्रति वर्ष देने वाले 'प्रचारक सदस्य'

७. विद्यादि गुणों के कारण अथवा संस्थान के कार्य के लिए जीवन देने वाले व्यक्ति अध्यक्ष की सहमति से कार्यकारिणी द्वारा जो सदस्य बनाये जायेंगे वे **'आजीवन सदस्य'** होंगे।

आप भी आज ही सदस्यता फार्म भर कर भेज दें

'ऋषि दयानन्द वैदिक संस्थान' का नाम व उद्देश्य

१. नाम—

(क) संस्थान का नाम 'ऋषि दयानन्द वैदिक संस्थान' होगा। किन्तु समस्त कार्य व्यवहार में 'दयानन्द संस्थान' ही प्रयुक्त होगा।

२. कार्यालय—दयानन्द संस्थान का वर्तमान कार्यालय १५९७ हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५ पर है।

३. उद्देश्य—**संस्थान के निम्न उद्देश्य होंगे—**

(क) विद्या का प्रचार और अविद्या की समाप्ति।

(ख) मानव मात्र के कल्याणार्थ सत्य, ज्ञान, मानवता और न्याय पर आधारित विचारधारा का प्रसार और शिक्षण संस्थाओं का स्थापन। साहित्य व पत्र, पत्रिकाओं का प्रकाशन।

(ग) उद्देश्यों की पूर्ति के लिए चरित्रवान प्रचारक, विशेषज्ञ, अन्वेषक और संन्यासी महानुभावों की सेवायें उपलब्ध करना।

(घ) विश्व के विभिन्न भागों में अपने केन्द्र खोलना तथा समान उद्देश्य वाले संगठनों को सम्बद्ध करना और उनकी सहायता करना व अपने उद्देश्य पूर्ति के लिए संस्थाएं स्थापित करना।

(ङ) उद्देश्यों की पूर्ति के लिये संस्थान दान, अनुदान, ऋण ले व दे सकेगा तथा सम्पत्ति का क्रय-विक्रय भी कर सकेगा।

आवेदन-पत्र

मान्य मंत्री जी! सादर नमस्ते

मैं संस्थान के कार्यों को बढ़ाने के लिए संस्थान का.........सदस्य बनना चाहता हूं।

प्रतिवर्ष श्रावणी पर.........रु० भेजता रहूंगा। और संस्थान की उन्नति के लिए मैं पूरी शक्ति से प्रयत्नशील रहूंगा।

भवदीय

स्थान — हस्ताक्षर.................

पूरा पता......... — ....

संकट में तुरन्त सहायता कीजिये

इस समय आपका संस्थान विषम आर्थिक संकट से गुजर रहा है। यदि तुरन्त ही सहयोग न मिला तो हमारी योजनाओं को भारी आघात लगेगा।

आप इन पंक्तियों को पढ़कर जो सहयोग कर सकते हों करें।

१. वेद भाष्य के नए सदस्य बनायें।
२. जनज्ञान मासिक व साप्ताहिक के अधिक से अधिक सदस्य बनायें!
३. आजीवन सदस्य जनज्ञान (साप्ताहिक या मासिक) के बनें।
४. भारी संख्या में साहित्य मंगायें और अधिक से अधिक दान तुरन्त भेजें।

हमें विश्वास है कि आप संस्थान के रचनात्मक कामों को रुकने नहीं देंगे।

कम से कम ११) तुरन्त भेजें।

—: विनीता :—

राकेश रानी पंडित

अध्यक्ष

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली—५

संस्थान में मेरे साढ़े चार वर्ष

संवत् २०२८ की दीपमाला पर दयानन्द संस्थान की स्थापना हुई थी। तब संस्थान के पास साधन न होने के बराबर थे। जन-ज्ञान (मासिक) के सदस्यों का सहयोग और प्रभु का आशीर्वाद ही हमारी पूँजी था। वेद के प्रचार की भावना थी, हमने कार्य आरम्भ किया और कार्य होता गया, बढ़ता गया।

कभी-कभी तो यह अनुभव हुआ, कि स्वयं प्रभु हमारे सारे कार्य करते जा रहे हैं। ग्रंथ छपते गए, पैसे का प्रबन्ध होता रहा, वेद छपते रहे···१५,५०० की संख्या में वेद भाष्य का प्रकाशन हुआ। छोटी-बड़ी १८४ पुस्तकें छपीं, १८-२० संस्करण सत्यार्थ प्रकाश के निकाले, ऋषि जीवन के निकाले, पोस्टर छापे और संसार के हर कोने में दयानन्द का संदेश पहुँचा।

जन्म के साथ ही संस्थान को भारी विरोध अकारण सहने पड़े, किन्तु इसके कार्य में कहीं रुकावट नहीं आयी···

किन्तु १९७५ की शताब्दी पर हम एक भूल कर बैठे और वह भूल थी सत्यार्थ-प्रकाश और ऋषि जीवन व अन्य प्रचार साहित्य को अत्यन्त सस्ता देना। वेद भाष्य को शीघ्र पूरा करने की धुन में बाजार से कागज भी उधार ले लिया और साथ ही जन-ज्ञान को भी साप्ताहिक कर दिया।

सस्ते साहित्य के प्रकाशन का महत्व आर्य जनता ने नहीं समझा, और परिणाम स्वरूप हम आर्थिक संकट में फंस गए। बनारस और रोहतक शताब्दी महोत्सवों के लिए भी हमने कुछ ग्रंथ विशेष रूप से तैयार कराए जिन पर व्यय तो हो गया पर इन महोत्सवों में उतनी सफलता नहीं मिली। जितनी मिलनी चाहिए, अतः संकट बढ़ता गया !

आरम्भ में ही संस्थान का सारा कार्य पंडिता राकेश रानी जी ही संभालती रहीं। साहित्य में भारी घाटा उठाने की हमारी नीतियों से उनका तीव्र मतभेद सदा रहा। हमें विश्वास था, कि आर्य जनता हमारे प्रचार के महत्व को समझेगी और सहयोग देगी किन्तु समय ने इस विश्वास को बल नहीं दिया।

परिणामस्वरूप दयानन्द संस्थान आर्थिक सकट में फंस गया ! हमने गम्भीरता पूर्वक यह अनुभव किया कि हमारी नीति कई अंशों में असफल रही है। अतः ७ जून १९७६ को इसका अध्यक्ष पद छोड़ना ही उचित समझा।

दयानन्द संस्थान का यह सौभाग्य है कि ५ वर्ष से सारे कार्यों को भली भाँति समझने वाली—कर्मठ और केवल कार्य के लिए ही समर्पित पंडिता राकेश रानी को

उसका अध्यक्ष बनाया गया है। मुझे यह स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं कि उनकी दूर दर्शिता, स्पष्ट वादिता और प्रत्येक विषय में सही पकड़ सदा सफल रही है। जहाँ हम कोरे आदर्शवादी रहे वहां वे प्रत्येक विषय में सदा व्यावहारिक रही हैं।

मुझे विश्वास है उनके नेतृत्व में संस्थान न केवल संकटों से पार होगा, अपितु दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति करते हुए आगे बढ़ेगा।

हम से जो भी बन पड़ेगा, कार्य पूर्ववत ही करते रहेंगे; केवल नीति-रीति के संचालन में अब हमारा कोई दायित्व न रहेगा।

नए स्थानों में आर्यसमाज

कौन खोलेगा ? पुराने आर्यसमाजों को नव जीवन कौन देगा ? ग्राम-ग्राम में दयानन्द संदेश कौन फैलाएगा और अज्ञान अंधकार के विरुद्ध युद्ध घोषणाएं कौन करेगा ?

इन सब प्रश्नों का उत्तर देने के लिए प्रांतीय संगठन बने थे। पर १०० वर्ष से भी अल्प काल में वे सम्पत्ति प्रबंध-पद-मोह में ऐसे उलझे हैं कि उन्हें अपना लक्ष्य तो स्मरण ही नहीं रहा ?

क्या किसी भी प्रांतीय सभा का ऐसा कोई अधिवेशन होता है, जिसमें इन प्रश्नों पर विचार किया जाए ? क्या किसी के भी पास इन प्रश्नों को सुलझाने का अवकाश है ?

भटके हुए नेता, लटकी हुयी जनता और अटका हुआ लक्ष्य, आज दिव्य स्वप्नों की राह खोज रहा है। मूक भाव से मौन सभी हैं चिन्तित, पर राह नहीं मिलती। क्या सब-कुछ ऐसे ही चलेगा, या कुछ व्यक्ति प्राण देकर वेद-दयानन्द की ध्वजा को उठाने का साहस करेंगे ?

वेद प्रचार सप्ताह आ रहा है

श्रावणी से जन्माष्टमी तक सारा आर्य जगत् वेद प्रचार सप्ताह मनाता है। किन्तु इस मनाने में अब न उत्साह दिखायी पड़ता है न कोई नयापन। केवल लकीर पीटने का ढंग बन गया है।

हम पिछले १००वर्षों से वेद प्रचार कर रहे हैं—पर आज तक भी 'वेद' को जनता का धर्म ग्रंथ हम नहीं बना सके। 'वेद' के प्रति श्रद्धा तो सभी वर्गों में हैं पर 'वेद' क्या हैं, कैसे हैं, उनमें क्या है, इस का ज्ञान तो अभी गिने-चुने व्यक्तियों को ही है।

वेद प्रचार सप्ताह में यदि प्रत्येक आर्यसमाज १० नए घरों में 'वेद' पहुँचा सके तो हम समझेंगे कि वेद सप्ताह प्रचार सफल रहा।

आज दिग्भ्रांत जन मानस को परमात्मा की अमरवाणी का प्रकाश ही नयी प्रभा दे सकेगा। निराशा की निशा का अंत 'वेद' से ही होगा। ऋषि दयानन्द ने कहा था—'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना सब आर्यों का परम धर्म है। क्या यह परम धर्म आप पालन करेंगे ? —भारतेन्द्र नाथ

एक और सस्ता प्रकाशन

संस्कार विधि :

बढ़िया कागज पर महर्षि का यह अनमोल ग्रंथ अब संस्थान ने प्रकाशित किया है।

छोटा साइज मूल्य = ३) । सजिल्द ४)

बड़ा साइज मूल्य ४) । सजिल्द ६)

नए महत्त्वपूर्ण अंग्रेजी प्रकाशन

100 YEARS OF THE ARYA SAMAJ

बड़े साइज में—५½×९ इंच सर्वश्रेष्ठ आर्ट पेपर पर बहुत ही बढ़िया मुद्रित अंग्रेजी पढ़े लिखे व्यक्तियों में प्रचार के लिए अनुपम—पं० भारतेन्द्र नाथ लिखित यह ऐसा प्रकाशन है जैसा विदेशों में ही प्रचार हेतु छपता है— मूल्य ५०पैसे

Universal Patriotism

स्वामी भूमानन्द सरस्वती द्वारा की गयी देश-भक्ति पूर्ण वेद मंत्रों की अनुपम व्याख्या, इस ग्रन्थ को पढ़कर आप मंत्रों का गूढ़ार्थ आसानी से समझ सकेंगे।

मूल्य केवल २)

ऋषि दयानन्द ने कहा था.....

बढ़िया तिरंगा कवर मूल्य: १ रु० ४० पैसे,

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

नया आकर्षक वैदिक साहित्य

१—श्रीमद्दयानन्दप्रकाश

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती लिखित महर्षि दयानन्द का भक्ति-भाव पूर्ण बड़ा जीवन चरित्र।

पृष्ठ ४०० मूल्य ६ रु०; सजिल्द ८)

२—बाल सत्यार्थ प्रकाश

बच्चों, स्कूलों व साधारण पढ़े लिखे व्यक्तियों के लिए सुप्रसिद्ध लेखक आचार्य स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती द्वारा लिखित : मूल्य २)५० पैसे,

३—सामवेद—आध्यात्मिक भाष्य :

पं० बुद्धदेव विद्यालंकार के वयोवृद्ध गुरु पं० विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड द्वारा किया यह अनुपम भाष्य अब छपकर तैयार है।

मूल्य सजिल्द=२५ रु०, पृष्ठ ६५० से अधिक

शीघ्रता करें : अपना आदेश आज ही भेजें—

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-११०००५

सत्यार्थ-प्रकाश की लागत

जो सत्यार्थ प्रकाश जनवरी से मई १९७६ तक हजारों की संख्या में संस्थान ने निकाला है उसकी लागत निम्न प्रकार आती है—

कागज	=	२.०० का
छपाई	=	.४० पैसे
टाइटिल छपाई	=	.१७ पैसे
व कागज बाइंडिंग	=	.२० पैसे
		२.७७

२)७७ पैसे लागत का सत्यार्थ-प्रकाश हमने २००) रु० सैकड़ा दिया है। केवल प्रचार के लिए। यदि इस प्रचार को आप उचित समझते हैं तो आज ही अपनी सहायता संस्थान को भेजिए—

अध्यक्ष

—राकेश रानी

सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी मनाइए

[सस्ते सुन्दर सत्यार्थ प्रकाश तैयार हैं]

१ शताब्दी संस्करण पुस्तक साइज
बढ़िया कागज पर २००) सैकड़ा

२ प्रचार संस्करण बड़ा साइज
बढ़िया कागज पर २५०) सैकड़ा

३ राज संस्करण बड़ा (सजिल्द)
बढ़िया कागज पर ३५०) सैकड़ा

४ उपहार संस्करण (कपड़े की जिल्द)
चिकने कागज पर ५००) सैकड़ा

५ मोटे अक्षर का बड़ा सुनहरी जिल्द मूल्य ५१) रियायती ३१)

६ सर्वश्रेष्ठ आर्ट पेपर पर मूल्य १०१) रियायती ६१)

संस्कार विधि—

१ बड़ा साइज सजिल्द ४००) सैकड़ा
२ बड़ा साइज अजिल्द ३००) सैकड़ा
३ छोटा साइज अजिल्द २००) सैकड़ा
४ छोटा साइज सजिल्द ३००) सैकड़ा

ऋषि जीवनी २०० पृष्ठ मूल्य २)।

दयानन्द चित्र दर्शन मूल्य २०)। १५) रियायती

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

नया वैदिक साहित्य

१. धरती का स्वर्ग : गृहस्थाश्रम

लेखक—श्री पं० शिवकुमार शास्त्री, काव्य-व्याकरण तीर्थ, संसद् सदस्य। मूल्य १)५०

पं० शिवकुमार जी शास्त्री आर्यसमाज के पुराने महोपदेशक रहे हैं। पिछले ३० वर्षों के अपने अनुभवों को उन्होंने "धरती का स्वर्ग" नामक पुस्तक में प्रस्तुत किया है।

गृहस्थाश्रम को कैसे स्वर्ग बनाया जाए ? इस विषय में शास्त्री जी का मार्गदर्शन सभी के जीवन को नयी प्रेरणा देने में समर्थ है।

पुस्तक का मूल्य लागत मात्र १)५० है।

२. वैदिक गृहस्थाश्रम

पं० विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड की महान् कृति : विवाह पर भेंट के लिए। कपड़े की जिल्द। मूल्य ६)

३. धर्म का सार

स्व० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय लिखित यह पुस्तक प्रचार के लिए अत्यन्त उपयोगी है। साधारण व्यक्तियों को समझाने के लिए इसे ६ कथाओं में प्रस्तुत किया गया है। मूल्य १),

४. महान् दयानन्द मूल्य १)४०

महर्षि दयानन्द को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखते हुए पं० शिवदयालु जी ने इस अनमोल पुस्तक में प्रस्तुत किया है।

५. आदर्श परिवार — मूल्य ६० पैसे।

राजस्थान के भूतपूर्व मंत्री श्री युगलकिशोर जो द्वारा लिखित यह पुस्तक प्रचार व विवाह आदि पर बांटने के लिए विशेष उपहार है।

६. प्रभु के चरणों में मूल्य १.४०।

प्रसिद्ध विद्वान् पं० हरिशरण जी द्वारा सामवेद के कुछ मंत्रों की सरल व्याख्या प्रार्थना रूप में प्रस्तुत की गयी है। मंत्रों को पढ़ते हुए साधक भाव विभोर हो जाता है।

७. वन्दना के स्वर मूल्य ८)

संपादक—श्री क्षमचन्द्र 'सुमन'

डीलक्स संस्करण १५)

अधिक से अधिक मंगाएं : बांटें

जन-ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली-५

संस्थान के नए प्रकाशन

१. आर्याभिविनय

काव्यमय व्याख्या सजिल्द २.५० अजिल्द १.५० ।

◆

२. वैदिक गृहस्थाश्रम : सजिल्द

पं० विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड मूल्य ६ रु०

◆

३. वैदिक गीता (पद्यानुवाद)

मूल्य १ रु०

◆

४. दयानन्द चित्र दर्शन

मूल्य २० रु०

किन्तु प्रचार के लिए
अभी मूल्य १५ रु०

◆

शीघ्र मंगाइए

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

—प्रोफेसर विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड

जरा और मृत्यु योगी पर आक्रमण नहीं करते

श्वेताश्वतरोपनिषद को भी महर्षि दयानन्द ने प्रामाणिक माना है। श्वेताश्वतरोपनिषद् का प्रवक्ता "श्वेताश्वतर" नामक ऋषि है। इस उपनिषद् के अध्याय ६ का खण्ड २१वां निम्नलिखित है—

तपः प्रभावाद्देवप्रसादाच्च ब्रह्म ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान् ।
अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृषिसंघजुष्टम् ।।

अर्थात् तपश्चर्या के प्रभाव से और परमेश्वर देव की कृपा से, श्वेताश्वतर ने ब्रह्म का साक्षात्कार कर, संन्यास धारण किये व्यक्तियों के लिए यह परम पवित्र सदुपदेश दिया, जो सदुपदेश कि ऋषि समुदाय द्वारा सम्यक् सेवित है।

"श्वेताश्वतर" का अर्थ होता है "सुफैद खच्चर" वाला। इसका असली अर्थ होना चाहिए "अधिकतर सात्विक इन्द्रयों-और-मन वाला"। ऐसा व्यक्ति ही परम पवित्र औपनिषद सदुपदेश दे सकता है। उपनिषदों में इन्द्रियों को "हय" अर्थात् अश्व कहा भी है। यथा "इन्द्रियाणि हयानाहुः" (कठोपनिषद्) अर्थात् इन्द्रियों को हय (अश्व) कहते हैं। मनुस्मृति में मन को भी इन्द्रिय कहा है। यथा—"एकादशं मनोज्ञेयमिन्द्रियमुभयात्मकम्" अर्थात् ११वीं इंद्रिय मन है, जो कि उभयात्मक है, अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय इन दोनों रूपों वाली है, क्योंकि मन ज्ञान का भी साधन है, और कर्म का भी। बिना मन के ज्ञान असम्भव है, और बिना मानसिक इच्छा के कर्म का होना भी असम्भव है।

श्वेताश्वतर ऋषि ने, श्वेताश्वतरोपनिषद् में, जो परम पवित्र उपदेश दिया उसका प्रारम्भिक स्वरूप निम्नलिखित है।

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च ।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ।।
अ० २, खण्ड १३ ।।

लघुत्वम् अर्थात् शरीर का हल्कापन होना, इतना न खाना कि शरीर में भारीपन महसूस हो, गरिष्ठ भोजन का न करना, अपितु सुपाच्य सात्त्विक भोजन करना; **आरोग्यम्** अर्थात् शरीर का रोग रहित होना; **अलोलुपत्वम्** अर्थात् शरीर के भारीपन न होने और नीरोगता के लिए खान-पान में लोलुपता का न होना, लोभ के कारण अधिक भोजन न करना, **वर्णप्रसादम्** अर्थात् चेहरे पर सदा प्रसन्नता का होना, **स्वरसौष्ठवम्** अर्थात् मीठे और प्रिय स्वर में बोलना, कठोर वाणी का प्रयोग न करना, **गन्धः शुभः** अर्थात् स्नान द्वारा शरीर को स्वच्छ रखना, जिससे शरीर से पसीने आदि का दुर्गन्ध न आकर, सदा शुभ गन्ध आती रहे, **मूत्रपुरीषम् अल्पम्** अर्थात् इतना खाना-पीना कि बार-बार शौच तथा मूत्र के लिए न जाना पड़े, इन सबकी सत्ता, योग में प्रथम प्रवृत्ति है अर्थात् इन सब का होना, मानो योग का प्रथम प्रक्रम है।

लघुत्व आदि प्रथम प्रवृत्तियों पर विजय पा लेने के पश्चात् योगाभ्यास प्रारंभ करना चाहिए। योगाभ्यास ऐसे स्थान पर होना चाहिए जहां कि कोलाहल न हो, और वायु के झोंके न आते हों। यथा—**"गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्"** (श्वेता० उप० अ० २, खण्ड १०)। तथा—

> **त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिरुध्य ।**
> **ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥**
> (श्वेता० २/८)।

अर्थात् योगाभ्यास के लिए छाती, गर्दन और सिर को एक रेखा में समुन्नत कर, अर्थात् सीधे रखकर और समतल पर बैठकर, अभ्यासी मन और इन्द्रियों को हृदय में रोके, और शब्द ब्रह्म अर्थात् ओ३म्-जप की नौका द्वारा भयप्रद सब स्रोतों से तैर जाय।

मन और इन्द्रियों को हृदय में रोकने का अभिप्राय यह है कि हृदय में मन की धारणा करके, हृदय प्रदेश में मन को बांध कर, ऐन्द्रियिक विषयों का बिलकुल चिन्तन न करे, और न मन में किसी प्रकार के संकल्प उठने दे। केवल ओ३म के जप में मन को स्थिर रखे। ओ३म् का जप एक नौका है जिसके सहारे अभ्यासी ने भयावह स्रोत तैरने हैं। ये भयावह स्रोत हैं इन्द्रियों के विषय। इन स्रोतों को **"पञ्च स्रोतोम्बु"** कहा है (श्वेता० १/५), अर्थात् पांच इन्द्रियां या पांच इन्द्रियों के विषय पांच स्रोत हैं, जिनमें विषय-अम्बु (जल) प्रवाहित हो रहा है। यह विषय-जल का प्रवाह भयावह है, इस प्रवाह में जनता बहती जा रही है, और गोते खा रही है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द, इनके स्वरूपों में जन-समुदाय फंसा हुआ दुःख भोग रहा है। इन विषय-प्रवाहों से तैर जाने का एक ही उपाय है, वह है ओ३म का जप। इस सम्बन्ध में योगशास्त्र के कतिपय सूत्रों पर विचार करने की आवश्यकता है। सूत्र (१/२४-२५) में ईश्वर के स्वरूप का वर्णन हुआ है और सूत्र (१/२७) में कहा है कि **"तस्य वाचकः प्रणवः"**। अर्थात् प्रणव, जिस द्वारा कि ईश्वर की प्रकृष्ट स्तुति होती है, वह शब्दब्रह्म—ओ३म् ईश्वर का निज नाम है। इसलिए **"तज्जपः तदर्थ भावनम्"** (१/२८) ओ३म् का जप तथा ओ३म् के अर्थ का चित्त में बार-बार निवेश करना चाहिए, इन्हीं पर चित्त को लगाए रखना चाहिए। इसका फल यह होगा कि 'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च" (१/२९), ओ३म्-जप और ओ३म् के अर्थ की भावना से प्रत्यक्-चेतना अर्थात् जीवात्मा के स्वरूप का ज्ञान हो जायगा,

और ईश्वर के स्वरूप का भी, तथा अभ्यास में जो अन्तराय अर्थात् विघ्न उपस्थित होते रहते हैं, ईश्वरीय कृपा से उनका भी अभाव हो जायगा। साथ ही "ईश्वर प्रणिधानाद्वा" (१/२३) पर व्यासमुनि लिखते हैं कि "**भक्ति विशेषात् आवर्जित ईश्वरः तमनुगृह्णाति अभिध्यानमात्रेण, तदभिध्यानादपि योगिन आसन्नतमः समाधिलाभः फलं च भवति**"। अभिप्राय यह है कि श्रद्धापूर्वक की गई भक्ति से ईश्वर, योगी के अभिमुख होकर, उसके अनुकूल होकर, केवल निज इच्छामात्र द्वारा योगी पर अनुग्रह करता है, इस ईश्वरीय इच्छा से भी योगी को समाधि लाभ और उसका फल मोक्ष शीघ्र प्राप्त हो जाता है।

अभ्यास के प्रकर्ष में अभ्यासी को नानाविध भान होने लगते हैं, जोकि ईश्वरीय साक्षात्कार के पूर्वरूप होते हैं। यथा—

नीहारधूमार्कानलानिलानां खद्योत विद्युत्स्फटिकशशीनाम्।
एतानि रूपाणि पुरः सराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे॥

(श्वेता० उप० २/११)

नीहार—अर्थात् स्वच्छ कोहरे का ध्यान में दीखना, धुआँ उठता हुआ दृष्टिगोचर होना।

ध्यान में अर्क अर्थात् सूर्य का दृष्टिगोचर होना; अनल अर्थात् आग दृष्टिगोचर होना, अनिल अर्थात् वायु का प्रवाह दीखना, खद्योत अर्थात् जुगनुओं या द्युलोक के नक्षत्रों की-सी झिलमिलाती द्युति का दीखना, विद्युत् की चमकों तथा लहरों का दृष्टिगोचर होना, स्फटिकों का दृष्टिगोचर होना, तथा भावनामय चांद दिखाई पड़ना—ये नानाविध रूप हैं जोकि योगाभ्यास के प्रकर्ष में आन्तर-दृष्टि में दीखते हैं, जोकि परमेश्वर की अभिव्यक्ति अर्थात् साक्षात्कार के पूर्व रूप हैं। इन नानाविध रूपों के दृष्टिगोचर होने पर योगी को विश्वास हो जाता है कि परमेश्वर का साक्षात्कार भी आसन्नतम है, शीघ्र होने वाला है।

योगाभ्यास द्वारा रोगों, जरा अर्थात् वृद्धावस्था तथा मृत्यु पर विजय प्राप्त किया जा सकता है। यथा—

पृथिव्याप्यतेजोऽनिलखे समुत्थिते पंचात्मके योगगुणं प्रवृत्ते।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥

(श्वेता० उप० २/१२)

पृथ्वी का अभिप्राय है घ्राणेन्द्रिय, जो कि पृथ्वी मात्रा से निर्मित है। आप्य का अभिप्राय है अप्-तत्व से निर्मित रसनेन्द्रिय। तेजस् का अभिप्राय है तेजस्-तत्त्व से निर्मित चक्षुः इन्द्रिय, अनिल का अभिप्राय है वायु-तत्त्व से निर्मित त्वगिन्द्रिय और "ख" का अभिप्राय है आकाश तत्त्व से निर्मित श्रोत्रेन्द्रिय। इन इन्द्रियों में जब अपने अपने तत्त्व का समुत्थान हो जाता है, अर्थात् इन्द्रियों के अपने-अपने तत्त्वों का जब सम्यक् जागरण हो जाता है तब रोगों, जरा और मृत्यु पर विजय प्राप्त हो जाता है। जब चित्त सत्त्वगुण प्रधान हो जाता है तब रोग आदि आक्रमण नहीं कर पाते। रोग, जरा और मृत्यु के कारण हैं चित्तनिष्ठ तमोगुण और रजोगुण। जरा पर विजय पाने का अभिप्राय है जरा का शीघ्र आक्रमण न होना, इन्द्रिय शक्तियों, मानसिक शक्तियों तथा शरीर पर नियत समय से पूर्व अशक्ति का साम्राज्य न होने पाना। सौ वर्षों

तक शरीर आदि की शक्तियों का ह्रास न होने पाना। यथा "**पश्येम शरदः शतम् शृणुयाम शरदः शतम् प्रब्रवाम शरदः शतम्, अदीनाः स्याम शरदः शतम्**"—अर्थात् सौ वर्षों तक हम देखते रहें, सौ वर्षों तक हम जीवित रहें, सौ वर्षों तक हम सुनते रहें, सौ वर्षों तक हम प्रवचन करते रहें, सौ वर्षों तक हम दीनता का अनुभव न करें, यह जरा पर विजय पाना है। तथा भूयश्च शरदः शतात्, अर्थात् सौ वर्षों से अधिक भी हम देखना आदि करते रहें—यह मृत्यु पर विजय पाना है, मृत्युञ्जय होना है। इच्छानुसार मृत्यु को पाना मृत्युञ्जयावस्था है। जैसे कि पितामह भीष्म मृत्युञ्जयावस्था को प्राप्त किए हुए थे।

रोगों, जरा और मृत्यु पर विजय पाना तभी सम्भव हो सकता है जब कि ऐन्द्रियिक विषयों का प्रातिभ-ज्ञान होने लगता है। जैसे कि कहा है कि '**ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते**" (योग ३/३६), अर्थात् जीवात्मा को जब अपने स्वरूप की अनुभूति हो जाती है उसके पश्चात् (योग ३/३५) श्रावण अर्थात् श्रवणेन्द्रिय को दिव्य और दूर के शब्द सुनने की योग्यता प्राप्त हो जाती है, वेदना अर्थात् त्वचा को दिव्यस्पर्श जानने की, आदर्श अर्थात् नेत्रेन्द्रिय को दिव्यरूप देखने की, आस्वाद अर्थात् रसनेन्द्रिय को दिव्यरस चखने की, वार्ता अर्थात् घ्राणेन्द्रिय को दिव्यगन्ध सूंघने की योग्यता प्राप्त हो जाती है। दिव्यश्रोत्र का वर्णन (योग ३/४१) में है। यथा "**श्रोत्राकाशयोः सम्बन्ध संयमाद् दिव्यं श्रोत्रम्**"। श्वेता० उप० २/१२ के अनुसार पृथ्वी आदि तत्त्वों का घ्राणादि इन्द्रियों में समुत्थान का अभिप्राय है घ्राणादि इन्द्रियों में अपने-अपने विषयों के ग्रहण करने की प्रातिभ या दिव्य योग्यता का प्रकट होना। पाँच ज्ञानेन्द्रियों के सम्बन्ध में इन योग्यताओं के प्रकट होने को "**योगगुणे प्रवृत्ते**" द्वारा वर्णित किया है (श्वेता० २/१२)।

उपर्युक्त उद्धरण में योग को अग्नि कहा है। यथा "**योगाग्निमयं शरीरम्**" अर्थात् जैसे अग्नि के संयोग से सुवर्ण का मल भस्मीभूत होकर सुवर्ण विशुद्ध हो जाता है, इसी प्रकार योग द्वारा चित्त के मल अर्थात् तमोगुण और रजोगुण भस्मीभूत होकर चित्त विशुद्ध सत्त्वमय हो जाता है। चित्त की इस विशुद्धि के होने पर रजोगुण तथा तमोगुण के परिणाम रोग, जरा और मृत्यु, योगी पर आक्रमण नहीं कर पाते।

नई……नई……बिल्कुल नयी

सशक्त भाव भरी श्रद्धापूर्ण भाषायुक्त

महर्षि दयानन्द की जीवनी

१६ चित्र : पृष्ठ २१२
तिरंगा बढ़िया कवर : मूल्य २)।

शीघ्रता कीजिए :

भारी संख्या में मंगाकर बांटें

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

१९७६–७७ का वर्ष

सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी वर्ष के रूप में मनाएं

लघु कथा

अधिक मूल्यवान् कौन जन या धन ?

कंजूसों की सूची में सर्वोपरि था शारदा के पिता का नाम ।

वह लखपति था, गरीब लोग ऋण लेने आया करते थे उसके पास ।

एक दिन एक निर्धन जन उसके पास आया और उससे प्रार्थना करने लगा। "सेठजी, मुझे दस रुपये उधार दे दो, जहाँ तक होगा मैं आने वाली पहली तारीख तक चुका दूंगा। आज मेरा बच्चा बहुत बीमार है। डाक्टर ने दस रुपये की दवा लिख दी है। मेरी इस आपत्ति के समय आप सहायता कर देंगे, तो मैं और मेरा बच्चा, आपका जीवन भर अहसान न भूलेंगे ।"

सेठ ने कहा "दस रुपये के मूल्य की कोई वस्तु गिरवी रख दो, मैं अवश्य बिना ब्याज के पैसे दे दूंगा ।"

सेठ साहब ! "मेरे पास इस फटी कमीज धोती के सिवाय, कुछ भी नहीं, मैं क्या गिरवी रख सकता हूँ ?"

सेठ बोला "तुम फोकट में रुपये लेना चाहते हो, किसी दानी के पास जाओ ।"

निर्धन बेचारा अपना सा मुंह लेकर लौट गया ।

घर आने पर उसकी स्त्री ने पूछा "काम बन गया क्या ? दो घण्टे वहां लगा आये ।"

उस गरीब ने उत्तर दिया 'नहीं ।'

पत्नी बोली "बच्चा अभी पाँच मिनट पहले दम तोड़ चुका है। जाओ, बच्चे के शव को श्मशान में गाड़ आओ ।"

निर्धन जन की आँखों से अश्रुधारा बह निकली। ऐसा लगा कि आंसू उस से कह रहे थे ।

"मनुष्य के जीवन से धनवान् का धन अधिक मूल्यवान् है ।"

सौम्य सन्त द्वरा लिखित प्रार्थनाएं

महात्मा प्रभु आश्रित

(१)

याजकों को उत्तम धन, सद्बुद्धि, मधुर वाणी प्रदान कीजिये

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।।

यजु० ३०।१

हे प्यारे देव ! गुप्त प्रेरक देव ! यज्ञस्वरूप यज्ञ देव ! सुखदाता प्रकाशकर्ता दृश्य अदृश्य जीवों पर्यन्त सारे संसार में क्रीड़ा करने वाले चराचर जगत् के उत्पादक सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त तथा सकल सामग्री के दाता प्रभो ! आप कृपा करो। तेरे पैदा किए संसार में तेरी सहनशील **धरती माता** के ऊपर आज संकट इतना बढ़ रहा है कि हम रहने वाले प्राणी त्राहि माम् ! त्राहि माम् ! कर रहे हैं। तेरे चमक रहे प्रकाश में भी दुःख के शिकार हो रहे हैं। तेरी दी हुई विश्राम देने वाली रात्रि में भी रो-रोकर पुकार कर रहे हैं। न दिन में चैन है, न रात्रि में आराम। हममें कैसे-कैसे तुझसे भयभीत न होने वाले मूढ़, निर्लज्ज, कुटिल, विद्याविरोधी, छली, कपटी, दंभी, अभिमानी, निर्दयी, दुष्ट इस पृथ्वी को कलंकित कर रहे हैं। हम सबको सुपथ पर लाने के लिए और अपने दोषों को दूर करने के लिए पुकार करते हैं कि यज्ञ और यजन विद्या को उत्पन्न करो और ऐसे यज्ञ करने वाले सुखदायक व्यवहार के रक्षक जन भी उत्पन्न कीजिये। यज्ञ करने वालों के ऐश्वर्य (शारीरिक आत्मिक) के रक्षक उत्पन्न कीजिये।

हे दिव्य गुणयुक्त प्रभो ! गंधयुक्त पृथ्वी और इसके सब पदार्थों के धारण-कर्ता स्वामी आप स्वयं बुद्धि को विमल करने वाले हैं। आप प्रज्ञानस्वरूप हैं इसलिए हम दीन यज्ञ करने वालों की बुद्धि भी शुद्ध पवित्र कीजिये। आप वेद की भगवती कल्याणी वाणी के स्वामी हैं हमारी वाणी को भी पवित्र कीजिये ताकि जब हम वेद मंत्र पढ़ें तो वह शुद्ध स्पष्ट सुरीले स्वर से युक्त कोमल एवं मधुर प्रतीत हो। हमारी वाणी के अन्दर ऐसी मिठास भर दो और हमारी वाणी को ऐसा स्वादिष्ट बना दो कि सदा मधुर रस से जीवन को तृप्त करती रहे।

(२)

साधक की चंचलता दूर करो भगवान् ।

ओ३म् वि मे कर्णा पतयतो विचक्षुः वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।
वि मे मनश्चरति दूर आधीः किं स्विद् वक्ष्यामि किमु न मनिष्ये ।।

ऋ० ६।५।६

हे प्रभो ! मेरे दोनों कान इधर-उधर भाग रहे हैं, और दोनों आँखें भी दूर-दूर जा रही हैं । हृदय में स्थित जो यह ज्ञान रूपी आप की ज्योति है, वह भी मन की चंचलता के कारण बुझी-सी जा रही है । अत्यन्त दूर के विषयों में लग कर मेरा यह मन दूर-दूर विचरण कर रहा है ।

हे प्रभो ! चंचल दशा में मैं आपका आश्रित (उपासक) आप से क्या कहूँ और क्या मनन तथा चिन्तन करूं । कैसे मनन करके आत्मसाक्षात् करूँ ।

प्रभो ! मैं तो तेरा आश्रित हूँ । मेरे मार्ग के कूड़ा-करकट आप ही साफ करें जैसे माता-पिता पुत्र के आगे से साफ करते हैं ।

(३)

व्रत आरम्भ की प्रार्थना

हे प्यारे प्रभु देव ! मैं आप की शुभ प्रेरणा से आपके श्रीचरणों में बैठा रहा हूँ, पर तेरी सहायता के बिना कुछ भी नहीं हो सकता । कोई कार्य नहीं बन सकता । आप ही मेरे उत्तम और सच्चे साथी हो, स्वामी हो, सब व्रत आप की सहायता से होते रहे हैं । बस, मित्रता के नाते आपकी मिन्नत करता हूँ कि इस व्रत को सफल बनाने, अपने आशीर्वाद का पात्र बनने में सहायता और सहयोग देकर, अथवा अपना ही व्रत मान इसे सफल बनायें । आपकी देन से ही जीवन है आपकी शक्तियों का किंचित् अनुभव भी प्राप्त हुआ । आप चाहें तो बड़े-बड़े योद्धाओं को नपुंसक बना दें—चाहें तो दुर्बल पतित से पतित को एक दम निज कृपा का पात्र बना श्रेष्ठ बना दें ।

जिस समय के लिए आप ने यह मानव चोला अनुदान दिया अब वह शुभ अवसर आया है कि वह पूर्ण सफल आप ही के योग से बनें । दयालु देव ! आशीर्वाद दें ।

(४)

प्रभो ! शरणागत के व्रत की रक्षा कीजिये

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहम नृतात् सत्यमुपैमि । यजु० १।५

हे व्रतपते ! ज्ञानस्वरूप ! उन्नतिदाता प्रभो ! मैं तेरा आश्रित तेरे १७-३-४६ के आदेश एवं प्रेरणा के पालन के लिए आज से व्रत करने लगा हूँ, परन्तु अल्पज्ञता, अज्ञानता और अयोग्यता के कारण असमर्थ हूँ, अशक्त हूँ । आपकी शरण में पड़ा हूँ

इसे पूर्ण करने का बल, साहस, शक्ति और आश्रय दीजिये। गुप्त प्रेरक प्रभो ! अपनी शुभ प्रेरणाओं से पथ-प्रदर्शन भी करते रहिये। मेरा यह व्रत संकल्प सत्य हो, अनृत न हो ताकि मैं सत्य के ग्रहण और अनृत के त्यागने में तेरे सहाय से सदा के लिए शक्तिमान् बन जाऊं और तेरे सत्य-स्वरूप का पुजारी बन कर सत्य के दर्शन कर सकूं। आप कभी अपने आश्रित को नहीं त्यागते। इस बलबूते पर संकल्प किया है। काम क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मत्सर आदि शत्रुओं ने एक मत्ता (षड्यंत्र) बांधा हुआ है, एक योजना बनाई हुई है। वे गुप्त आक्रमण के अभ्यासी बने हुए हैं। वे सदा ही इसी ताक में रहत हैं कि जब भी कोई आप से अलग होता है उस पर टूट पड़ते हैं। इसलिए प्रभु देव ! अपने आश्रित को एक क्षण भी पृथक् न होने दीजिये। आप तो कभी अलग नहीं होते पर हम अल्पज्ञ संसारी जीव प्रलोभनों में फंसे हुए अनेक वार आप से मुख मोड़ दूर हो जाते हैं। जैसे माता अपने नादान शिशु का स्वयं ध्यान रखती है, आप भी मेरी मंगलमयी माता हो और शतक्रतु हो और यह भाव और स्वभाव भी आप ने ही संसारी माता से धरा हुआ है। आप ही मेरे पथ की वागडोर संभाले रखिए ताकि मेरा बेड़ा पार हो सके।

हे प्रभो ! तुझ सहयोगी के सहयोग बल से युक्त हुए हम दबाने की कामना करने वाले काम क्रोध आदि आत्मिक शत्रुओं को प्रति उत्तर दे सकें (दबा सकें) क्योंकि तू हमारा है हम तेरे हैं।

पतित पावन नाम सुन कर मैं शरण तेरी पड़ा।
सफल कर इस नाम को अपना मुझे कर लीजिए।।

(५)

मौन व्रत में मन का मौन भी अभिप्रेत

प्रभुदेव ! इन काल्पनिक विचारधाराओं से भी सुरक्षित रखें। जब अपनी परीक्षा के लिए हर प्रकार के व्यवहार पत्र व्यवहार के लिए प्रतिबन्ध रखा है तो ये विचारधाराएँ भी (चाहे अच्छी हों) जब मैं ऐसी सलाह देने के लिए भी पत्र नहीं ले दे सकता तो विचार क्यों आयें। हे व्रतपते। मेरी तो यही निर्बलता है। इसी के लिए तो मैंने आप की शरण पकड़ी है कि आप ही व्रतपति हो। आपके ही बल और सहारे से मैं अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर सकूंगा। इसलिए नाथ ! आप वसु पिता हो मुझे बचाओ, बसेरा दो और ढाँपो। आप शतक्रतु मां हो, आपके पास सैकड़ों युक्तियां हैं मेरी रक्षा करो।

(६)

व्रत साधना के लिए प्रार्थना

हे प्रभु देव ! आज आप से मैं आप की दया से अन्तः प्रेरणा ११-८-६२ के अनुसार अदर्शन मौन व्रत में बैठ गया हूँ। मैं नहीं जानता कि मैं किस प्रकार अपनी अन्तःशक्ति का विकास करूं। मैं आप का आश्रित हूँ। आप सदा मेरी रक्षा और रहनुमाई करते हो। मैं उतावले में और तुच्छ अहं भाव की शक्ति से प्रेरित

होकर एकदम किसी क्षेत्र में कूद पड़ने की न प्रवृत्ति रखता हूँ न सामर्थ्य ! मुझे एक मात्र तेरा ही भरोसा है !

यह साधना कराने का मार्ग या कार्य मेरा नहीं, आप ही प्रभु देव का है। जब और जैसा आप मेरे प्रभु अथवा महापुरुष मुझे चलायेंगे। वैसा तभी मैं चलूंगा।

(७)

व्रत में सत्यनिष्ठा चाहिए, वरना दिखावा होगा

हे प्रभु देव ! सबसे कठिन व्रत सत्य का पालन है और यही सत्यपालन सब बुराइयों, दोषों से मुक्त करा सकता है। यही सत्यपालन तेरी आज्ञाओं का पालन है। यही मेरी सच्ची पूजा है। यह पालन सिवाय तेरी निज दया के, मानव से मुश्किल, अति कठिन है। तू चाहे तो यह कठिन से कठिन भी मनुष्य के लिए सरल और सुगम बन जाये। जब भी उपासक या साधक तेरे भक्त को इसके पालन में दिखावे की झलक अपने मान, यश के लिए उत्पन्न हो जाती है तब वह ढाँचा ही ढाँचा रह जाता है। जो होता तो खूबसूरत है, परन्तु अन्दर से निर्जीव-निष्प्राण बन जाता है। दिखावे के कारण अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो पाता। यह दिखावा भी तीन प्रकार का होता है—तमोगुणी, रजोगुणी और सतोगुणी रूप से। तीनों ही अन्तःकरण की शुद्धि से वंचित रहते हैं और तेरी ऐसी पवित्र महान् देन को क्षणभंगुर नाशवान् पदार्थ के लिए खो बैठते हैं। इस दिखावे के सत्यपालन में क्रोध अवश्य रहता है, गुप्त रूप से जमा रहता है। तमोगुणी— सत्य के दिखावे वाले में लोभ और रजोगुणी वाले में काम। सतोगुणी वाले में अहंकार करता है। विरला भाग्यवान इस दिखावे से बचता है—जिस पर तेरी दया विशेष होती है।

(८)

व्रत पूर्ति पर प्रभु का धन्यवाद

ओ३म् स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥ यजु० १९.७१.१

ओ मेरी वरदाता माता ! तूने मुझे अपनी शरण में रखकर लगभग ५३ वर्षों तक मेरी आत्मा का भरण-पोषण किया और निरन्तर अपनी दया का पात्र बनाए रखा हर प्रकार से मेरी लाज रखी। अब अन्त में इस व्रत के द्वारा मुझे अपने प्रभु पिता के कितना समीप पहुँचा दिया कि उस अपने प्रभु को इष्टदेव सद्गुरुदेव और सचमुच जीता जागता पिता साक्षात् अनुभव करवा दिया।

आज पवित्र अथर्ववेद का मन्त्र जो तेरी महानता को पुकार-पुकार कर कह रहा था, वह मंत्र मुझ पर तूने चरितार्थ कर दिखाया। माँ ! मेरी स्नेहमयी माँ ! मंगलमयी माँ ! वरदायिनी माँ ! आज मैं गद्गद हो तेरे चरणों में प्रेम अश्रुओं से नमस्कार कर रहा हूँ। ओ मेरी पवित्र भगवती सावित्री गायत्री माता ! तुझे फिर नमस्कार हो ! नमस्कार हो॥

(९)

प्रभो ! संपूर्ण दुर्गुणों वासनाओं को दूर कीजिये

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ यजु० ३०।३

हे सकल जगत् के उत्पत्ति कर्ता, समग्र ऐश्वर्य युक्त, सुख स्वरूप, विघ्न-विनाशक सब दुःखों के हर्ता, सकल सुखदाता प्रभो ! कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुर्वासनाओं, कुचेष्टाओं, कुसंस्कारों, दुःखों-दर्दों क्लेशों, संकटों, पीड़ाओं और दुर्दिनों को दूर कर दीजिए। मेरी नस-नस, नाड़ी-नाड़ी, रोम-रोम बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख दस सहस्र दो सौ एक नाड़ियों और बाल खाल से, मेरी आत्मा से, समस्त वासनाओं को दूर कर दीजिए और अपने गुण, अपने कर्म और अपने स्वभाव का मेरे हृदय पर राज्य स्थापित कीजिए।

राजेव दस्म निषद्योऽधि बर्हिषि ।

अर्थात् आपके गुण, कर्म स्वभाव का राज्य मेरे हृदय पर रहे।

१. जीवन का मैंने सौंप दिया सब भार तुम्हारे हाथों में ।
उद्धार पतन अब मेरा है भगवान् तुम्हारे हाथों में ॥

२. हम तुमको कभी नहीं भजते, तुम हमको कभी नहीं तजते ।
अपकार हमारे हाथों में, उपकार तुम्हारे हाथों में ॥

३. हम में तुम में है भेद यही, हम नर हैं तुम नारायण हो ।
हम हैं संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में ॥

४. दृग् बिन्दु बनाया करते हैं, इक सेतु विरह के सागर पर ।
जिस पार से हम विचरा करते, वह पार तुम्हारे हाथों में ॥

(१०)

ज्योतियों की ज्योति प्रभो मन का अंधेरा दूर करो

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥
यजु० ३४।१

ज्योतिर्मय से ज्योति जगा ! हे ज्योतिस्वरूप प्रभो ! सर्व संसार के अन्दर तेरा प्रकाश हो रहा है। मेरे शरीर के चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश है परन्तु मेरा अन्तर प्रकाश-शून्य है। कितना अन्धेर है कि आपका इतना बड़ा सूर्य जो सर्व संसार को प्रकाश देने में समर्थ है, तेरी विद्युत् की चमक कई भूले यात्रियों को मार्ग दिखा देती है पर मेरे इस नगण्य मन का मार्ग प्रदर्शन करने में असमर्थ है ! जहाज के जहाज तेरे ध्रुव की कृपा से अपनी यात्रा सीधी पूर्ण करके अपने लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं। परन्तु ध्रुव भी इस मन से हार मान गया है। चन्द्रमा अपने शीतल प्रकाश से अनेक प्राणियों को मोहित कर लेता है ! कान्ति और शान्ति देता है परन्तु मेरे संतप्त मन को शान्त नहीं कर सकता। नाथ ! यह बड़े वेग वाला मन तेरी अपनी ही ज्योति से प्रकाशित हो सकता है। तेरी ही सामर्थ्य से शान्त और शीतल बन

सकता है। तुझ से ही मार्ग प्रदर्शन प्राप्त कर सकता है। भगवन्! कृपा करो, एक बार तो मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार करो। आखिर मैं तेरे ही स्वरूप में लीन हो ब्रह्ममय कहलाता था। यह तू जानता ही है कि अपने आप तो तेरी गोद से जुदा नहीं हुआ। ब्रह्मलोक से मृत्युलोक में अपनी स्वेच्छा से नहीं आया। तेरे नियम ने ही मुझे पृथ्वी पर वास प्रदान किया और तू ने अपने अमृत पुत्र का ऐसा साथी मन बनाया जो मुझे असंख्य वर्षों से तेरे समीप नहीं बैठने देता। (अच्छी तूने भलाई की!) कभी पिता भी पुत्रों को इतनी देर जुदा रखता है? हे पिता! क्यों व्याकुल कर रहे हो? क्या इसमें तेरा गिला नहीं है! निस्संदेह तेरे समान कोई नहीं जो मेरी सिफारिश करे। तुझे तरस दिलाये, सच सुनाये। परन्तु मैं तो तेरा पुत्र ही हूँ। आप ही कह देता हूं तेरी गोद में बैठने वाले अनेक तेरे पुत्र आ गये परन्तु तेरी प्रसन्नता में कमी नहीं आई नहीं तो तू मुझ पतित की पुकार सुन ही लेता।

भक्तवत्सल आप हो, अब और मत भटकाइये।
पुत्र हूँ, निज गोद में मुझकोपिता बिठलाइये।

(११)

भक्त भगवान् से क्या मांगे

हे भगवान् महिमा महान्! मैं बहुत बार ऐसा भी विचारा करता हूँ कि तुझ से कुछ मांगूं, पर फिर भी रहा नहीं जाता। कहते हैं 'बिन माँगे मोती मिले माँगे मिले न भीख'' पर मैं कुछ ऐसा निर्बल-सा हूँ कि कई दिन तो यही कहता हूँ—प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो, तेरी इच्छा पूर्ण हो। फिर भी मेरी याचना क्यों उत्पन्न हो जाती है। मुझे इसका वास्तविक ज्ञान नहीं होने पाता कि कि माँगना अच्छा है या न माँगना अच्छा है। हे अबलों के बल! असमर्थों के सामर्थ्य। मुझ अबोध के बोध! निराश्रय के आश्रयदाता! आप ही कृपा करो, मार्ग दर्शाओ सन्मार्ग पर चलाओ। मेरी वाणी में तेरी मिठास हो, मस्तिष्क में तेरा विश्वास हो, हृदय में तेरा प्रकाश हो, मन में तेरा निवास हो। मैं एक और याचना रखता हूँ कि चित्त में मेरे तेरी ही स्मृति हो, मन में धृति हो वाणी पर तेरी श्रुति हो और मस्तिष्क में तेरी ही आकृति हो, बस इससे अधिक नहीं मांगता। इन वस्तुओं को मांगे बिना रह भी नहीं सकता। यदि ये वस्तुएँ भी न मांगनी हों तो प्रभो! अपने आश्रित को निःसंकल्प और संकल्प विकल्प से रहित कर दो। आप ही करोगे तो यह मन चुप और शान्त हो जाएंगा। तेरे संकेत से तृप्त और संतुष्ट हो सकता है और किसी से नहीं हो सकता। इसलिये आप जैसा भी मेरे लिये मंगल देखो वही करो—वही करो।

(१२)

जननी मां व प्रभु रक्षा कीजिये
दयालु! मेरा त्याग न कीजिए।

माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे।

साम० २१२

हे परमेश्वर! मेरी माता और आप दोनों ही मेरे लिये समान हैं। जैसे पुत्र

माता की सेवा करता है। वैसे ही मैं आपकी सेवा करूँगा। माता जैसे पुत्र को पालती है वैसे ही आप मेरा पालन करें। ज्ञान-धन, भक्ति-धन और वाक् सिद्धि के लिये आप और मेरी माता दोनों ही मेरा रक्षण करें।

(१३)

सर्वशक्तिमान् ! रक्षा कीजिए

ओ३म् सा मा सत्योक्तिः परिपातु विश्वतो द्यावा च यत्रा हानि च।
विश्वमन्यन्ति विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः॥

ऋ. मं. १०।३७।२

हे सर्वामिकेश्वर ! आपकी सत्य आज्ञा जिसका हमने अनुष्ठान किया है वह हमको सब संसार से सर्वथा पालन और सब दुष्ट कामों से सदा पृथक् रखें कि कभी हमको अधर्म करने की इच्छा भी न हो। दिव्य सुख से सदा युक्त करके यथावत् मेरी रक्षा करें। जिस दिव्य सृष्टि में सूर्य आदि दिवस के निमित्त आपने ही विस्तारे हैं। वहाँ भी हमारा सब उपद्रवों से रक्षण करो। आप से अन्य (भिन्न) विश्व अर्थात् सब जगत् जिस समय आपके सामर्थ्य से (प्रलय में) प्रवेश करता है (कार्य सब कारणात्मक होता है) उस समय में भी आप हमारी रक्षा करो। जिस समय यह जगत् आपके सामर्थ्य से चलित हो के उत्पन्न होता है उस समय भी सब पीड़ाओं से आप हमारी रक्षा करें। जो जो विश्व का हन्ता (दुःख देने वाला) है उसको आप नष्ट कर दीजिए। क्योंकि आपके सामर्थ्य से सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होती है। आपके सामने कोई राक्षस (दुष्ट जन) क्या कर सकता है ? आप सब जगत् में उदित (प्रकाशमान) हो रहे हैं। सूर्यवत् हमारे हृदय में कृपा करके प्रकाशित होओ—जिससे हमारी अविद्या अन्धकारमयता सब नष्ट हो।

ओं मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्ये।
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक्॥

साम०

हे अंधकार अज्ञान विनाशक प्रभो ! मैं आपका आश्रित हूं। आपकी ही एकमात्र शरण हूं। मेरा कभी त्याग न कीजिये। आपका सहारा (आश्रय) ही एकमात्र सकल सुखों का देने वाला है। आप हमारी रक्षा करो। आपकी प्राप्ति ही एकमात्र मेरा लक्ष्य हो। आपका तो स्वभाव ही है कि अंगीकृत को कभी नहीं छोड़ते। सो आप कभी भी मेरा त्याग न कीजियेगा।

(१४)

पाप की जड़,-संस्कारों का नाश कीजिये प्रभु देव ! शरण पड़े की लाज रखिए।

ओ३म् ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः॥

ऋ० १।३६।१४

प्रभु देव ! पाहि पाहि मेरी रक्षा करो, रक्षा करो; सर्वोपरि विराजमान

प्रभो ! अविद्या आदि महापाप से सदैव अलग रखो, निरन्तर मेरी रक्षा करो। विज्ञान से विविध विद्या दान से। प्रभो ! अनेक बार आप मेरी रक्षा करते हो जन्मकाल से ही मेरी रक्षा करते आये हो परन्तु वह रक्षा तत्कालीन बचाव कर देती है। सदा के लिए नहीं करती, कुसंस्कार फिर जाग आते, फिर आप रक्षा कर दे तेहो।

परन्तु नाथ मैं तो इससे दीन बना रहता हूं। यद्यपि प्रभु अपने स्वामी से प्रार्थना करने में कोई दीनता नहीं, आपके सामने तो मुझे सदा दीनता से ही पुकार करनी है फिर भी प्रभुदेव ! मैं आपका आश्रित हूं। आप परम पुनीत हो, दयालु और सर्वशक्तिमान् हो। आप मुझे अपना विज्ञान दें। यह ज्ञान तो मुझे रहता है कि पाप वृत्ति शत्रु है, परन्तु विज्ञान न होने से मैं उसे बल नहीं दिखा सकता। जैसे पूर्वकाल के ऋषि-मुनि पाप वृत्ति को कड़क कर बोल देते थे, घमका देते थे।

ओ३म् परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि ।
परेहि न त्वा कामये वृक्षाँ वनानि संचर गृहेषु गोषु मे मनः ॥

यजु० ६।४५

अरे पाप ! शत्रु ! दूर हट जा, परे हट जा। भाग जा हमारे समीप से। मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं—मुझे इच्छा नहीं तुम्हें पास रखने की·········इसलिए प्रभुदेव ! कृपा करो। आप उत्कृष्ट (ऊर्ध्व) हो, सबसे उत्कृष्ट हो, मुझे जो आपने अपनी अपार दया से यहाँ तक पहुँचाया है, एक गरीब, बेकस और अनाथ अपठित असमर्थ के ऊपर इतनी दया की है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक उत्थान किया है। जन्म से कितने दुर्गुणों और अवगुणों से बचाए रखा है और कितने अवगुण विनष्ट कर दिए हैं। कितनों के सम्मुख आने पर उनको मार भगाते हो। जनता का मुझे प्रेमपात्र बनाते हो, आदर सम्मान की दृष्टि से उसमें रमण कराते हो। इस मेरी ऊर्ध्व अवस्था की रक्षा करो कि ये क्षुद्र वृत्तियां, निकृष्ट वासनाएँ तेरे प्रदान किए उच्च आसन से मुझे न गिरा देवें। तो प्रभुदेव अपने नाम की लाज रख, तू मेरा प्रभु है और मैं तेरा आश्रित हूँ। आप जैसे समस्त संसार का नित्य पालन करते हो, मेरे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि सब शत्रुओं रिपुओं को अच्छे प्रकार जला दो। सम्यक् भस्मीभूत कर दो। ओ मेरे प्रभो ! पाहि पाहि रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए—मेरा हृदय रमणीक स्थान बन जाए, आपके सदा निवास का स्थान बन जाए।

पशु पक्षी मनुष्य भी वहाँ ही डेरा लगाते हैं जहाँ उनको रमण करने का क्षेत्र मिलता है। फिर कैसे अपवित्र हृदय में आप वास करो। इसलिए प्रभो ! जहाँ आप रमण करते हो वहाँ ही अपना सर्व ज्ञान और सर्व आनन्द बिखेरते हो। आप परम पुनीत सर्वशक्तिमान् परम दयालु प्रभु हो; मेरे प्रभु हो, और मैं आपका आश्रित, महा अपवित्र, कायर, भीरु, कठोर हृदय यदि रह जाऊँ तो यह आप के नाम को शोभा नहीं देगा। यह जँचता नहीं कि प्रभु तो परम पवित्र हो और प्रभु का आश्रित अपवित्र महा अपवित्र रहे। प्रभु तो सर्व शक्तिमान् हो और प्रभु का आश्रित भीरु कायर रहे। प्रभु तो परम दयालु हो, प्रभु का आश्रित कठोर हृदय रहे। इसलिए मैं आपका आश्रित पुकार करता हूँ।

**ओ३म् सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा ।
मर्य इव स्व ओक्ये ।।**

ऋ० १।२।१।१३

हे सोम परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारे हृदय में यथावत् रमण करो। जैसे सूर्य की किरण, विद्वानों का मन और गाय पशु अपने-अपने विषय घास आदि में रमण करते हैं वा जैसे मनुष्य अपने घर में रमण करता है वैसे ही आप सदा स्वप्रकाशयुक्त हमारे हृदय (आत्मा) में रमण कीजिए जिससे हमको यथार्थ सर्वज्ञान और आनन्द हो ।

रमो, रमो, अभिराम, जैसे गौवें रमें यव वन में,
मानुष रमे निज सौख्य सदन में, ऐसे प्रिय तुम मेरे तन में ।।
करो अभी विश्राम ।

(१५)

भक्त की आह जारी, प्रभु जी दर्शन दीजिए

मेरे प्रभु ! बस लगातार सात घंटों से उदास हो रहा हूँ रोना चाहता हूँ । आंसू ही नहीं निकलते । तू इतनी कृपा भी नहीं करता कि मुझे रुला ही देवे । मेरा पश्चात्ताप हो जाये । इसीलिए व्रत में तू बिठाता है ? कि स्वप्न में भी मेरी सहन-शक्ति न रहे । इसलिए कि अहंकार के घोड़े पर सवार हूँ । यही कारण है कि तूने मुझे घोड़े पर सवार कर दिया है कि मैं पैदल यात्रियों को उनके मर्यादा सिखाने पर क्रोध से उत्तर दूं । यदि व्रत में भी तू मेरी रक्षा न करेगा तो और कोई आकाश से देवता ने तो उतरना नहीं । मैं अपने इस पाप को अथवा क्रोध से उत्तर देने के पाप को बहुत ही अनुभव कर रहा हूँ । इसीलिए बारम्बार प्रयत्न करता हूँ कि खुले दिल से (फूट-फूट कर) रुदन करूँ । परन्तु अनोखी विचित्रता है कि रुदन आता ही नहीं । मुझे उस नाड़ी का भी ज्ञान नहीं जिसको दबाने से रुदन आ जाए । लोगों के सम्मुख शीघ्र रुदन आ जाता है। दिखावे और बनावट में भी—वे नाड़ियाँ इस मन का पूरा-पूरा साथ देती हैं । पर अब तो मुझे जंगल की एकान्त कुटिया में देख कर मेरी सुनती ही नहीं । पता नहीं मन ने उनको कहाँ छिपा दिया है । प्रभो, एक तू ही मेरे साथ कुटिया में है । पर मन जानता है कि तू भी सामने दृश्य (जाहिर) नहीं । तेरी विद्यमानता का तो नाम ही नाम है । तू केवल नाम मात्र को ही है । अन्यथा एक बार तू मेरे सामने आ जाये तो मैं सच कहता हूँ, सौगंधपूर्वक सत्य कहता हूँ कि मेरी सारी की सारी नाड़ियाँ मन सहित फूट-फूट कर रुदन करने लग पड़ें । प्रभो आजा मान जा भला रुलाने में भी तेरा कोई खर्च लगता है ?

भगवान् ? मैंने माँगा क्या ? रोना । कौन सा राज्य मांग लिया । नन्हे बच्चे सारा दिन रोते हैं—निर्धन पेट की रोटी को रोते हैं । रोगी फूट-फूट कर रोते हैं ।। छात्र अध्यापक की मार से रोते हैं । अनाथ अपने सिर की छाया पिता को रोते हैं ।। इतने रोने वाले लाचारी से रोते हैं उनको तू ही रुला रहा है ! वे हंसना मांगते हैं, तू रुलाये जाता है और मैं रोना मांगता हूं तो तू एक नहीं सुनता ।

हाँ तू सच्चा है। उनका रोना तो तेरा मनोरंजन है और मेरे रोने में मेरा ही मनोरंजन होगा। तब तो तू भी स्वार्थी है। मुझे (मनुष्य को) यूँही बदनाम करता है। तेरा परमार्थ तो तब है, जब तू मेरा मनोरंजन करे।

आ, आ, अपने नाम का वास्ता मान। तुझे तेरे नाम की ही शपथ देता हूँ, अपने नाम की लाज रख—इस छोटी सी कुटिया में आ जा। सरकंडों की दीन कुटी में आ विराज—राज्य महल नहीं है कि तुझे फंसा लेंगे। द्वारपाल न आने देंगे। यह तो अनाड़ी (अकिंचन) की कुटिया है। देख तुझे ढूँढ़ने के लिए क्षुद्र-क्षुद्र जन्तु रंग-बिरंगे वेश धारकर मेरे पास ही आते हैं। भूरि-भूरि च्यूंटियाँ काली टिंडनी और मकोड़े, श्वेत रंग के कीड़े, लाल पीले भिड़; विचारे हरदम तुझे इसी जगह खोजते रहते हैं, राज्य महलों में तो इनको स्थान नहीं मिलता, ये तुझ जगदाधार को यहीं ढूंढ़ते हैं। हरे हरे रंग के मच्छर दल के दल बांध मेरे इर्द गिर्द परिक्रमा करते हैं। बड़ी सुरीली आवाज से गान करते हुए नृत्य करते हैं और मेरे कान के पास अपनी वीन बजाकर पूछते हैं कि प्रभु आश्रित ! तू ने प्रभु को कहाँ छिपा रखा है। सारी कुटिया को छान मारते हैं—पर तू उनको भी दर्शन नहीं देता। कुटिया के बाहर दिन भर कौवे और चिड़ियाँ मुझे तेरी पुकार करते सुनाई देते हैं। फाख्ता बिचारी तो रात को भी बोल उठती है।

आ मित्र, आ, आ, सखा आ, मेरी पानी की डिग्गी (तालाब) के मेंढ़क भी तुझे जोर-जोर से बुलाते हैं। प्रभो, मेरी कुटिया का सारा वायुमण्डल मेरे लिए सिफ़ारिश करता है कि तू इस दीन को दर्शन दे। वे समझते हैं कि जो तेरा प्रभु आश्रित है तू उसके पास तो जरूर ही आता होगा। वे अन्दर घुस आते हैं पर तुझे न पाकर निराश हताश हो कर वापस चले जाते हैं। पर प्रभो ! धन्य हैं वे जो कि आते और जाते रहते हैं परन्तु पीछा नहीं छोड़ते। हे मूकों की वाणी ! अधमरों के जीवन ! निर्धन अशक्तों की शक्ति ! गरीब बेकसों की शान ! अब करुणा कर, दया कर। ऐसी कुटिया कहीं नहीं मिलेगी। तेरे प्राकृतिक घास-फूस सरकण्डों की बनी है। बनाने वालों ने बड़ी श्रद्धा और प्रेम से बनाई है। इसमें दुकानदारी या सौदागरी की कीमत का भाव सम्मिलित नहीं हुआ।

प्रेम के स्रोत आ जा—प्रेम के भूखे आ जा—जो अर्थार्थी व्याकुल प्रेम करता है वह तृप्त सुखी जीवन बिताने वाला नहीं करेगा। अकेले के पास न आयेगा तो मेले में कहाँ समायेगा। दुई वालों के पास तो तेरी एक अधेला भी कीमत नहीं पड़ती। तू स्वयमेव उन से दूर भागता है। और जो 'द' को हटाकर उई कहता है उसके पास भी नहीं जाता। फिर किस के पास जायेगा, आप ही बता ! इस व्रत का कुछ इशारा दे। यहाँ किस पथ-प्रदर्शक को बुलाऊँ ? जब व्रत ही अदर्शन कर दिया, मौन कर दिया। स्वामिन् ! यह शरीर, यह आत्मा तेरे ही आश्रित है। तू प्रभू है उसका और यह तेरा आश्रित है। कह दे क्या कहूँ। कहो तू ही तू............ ई.........तू ही।

(१६)

प्रभु सविता देव ! मार्ग प्रदर्शक बन, प्यार से अथवा बांध कर अपना अनुगामी बना।

हे पिता ! मैं तुझे कैसे बांध सकता हूँ ? मनुष्य तो पशु को बाँधा करते हैं

और मैं तो स्वयं ही पशु हूँ। मुझे तो तू ही बाँधेगा। पशुओं में भी मैं तो ऊंट हूँ ऊँट ! तेरा ऊँट, आश्रित और उष्ट्र में अन्तर ही क्या ? मेरी नाक में एक में नहीं, दोनों नथुनों में मुहार डाल कर तू राह पर चलाता चल। प्राण और अपान की मुहार लगा कर तू ले चल जिधर भी ले चल तू आगे मैं तेरे पीछे-पीछे। यह संसार तो भयंकर मरुस्थल है। मनुष्य और सभी पशुओं के इस पर चलने से पाँव फिसल जाते हैं। जो पग रखते हैं वही पीछे फिसल जाता है। चाहे वह तीव्रगामी भी हो, मैं तो तीव्रगामी नहीं इसलिए ऊंट ही अच्छा रहूँगा। और पशु तो गले में, सींगों में, मुंह में रस्सा और लगाम डलवाएं, मैं तो नाक में मुहार से चलूंगा। तेरे लिए भी सुगम और मेरे लिए भी सावधानी कराने वाली। इस मरुस्थल में तो कोई मार्ग शाह राह की तरह दृष्टि में नहीं दीखता, तू ही मेरा सारथी सारवान, स्वामी ऊंट का, इस असीम मरुस्थल बेराह से, सीधा अपने जाने हुए मार्ग (सुषुम्णा) से गंतव्य स्थान पर अपने घर ले जा सकता है। और जहाँ तू बिठा दे तुझे किसी खूंटे की आवश्यकता नहीं—न किसी वृक्ष की और न सहारे की, रेत में न खूंटा गाड़ा जा सके—न वृक्ष डिग सके। पशुओं को तो बाँधना मरुभूमि में कठिन होता है ऊंट को तो जहाँ भी बाँधना चाहो सारवान जानु बाँध कर छोड़ देता है।

(वर तवकुल जानुए उष्ट्र विवद) स्वर प्रणिधान के छोटे से टुकड़े उसी मुहार से बाँध सकता है और मैं तेरा ऊंट निश्चित वहाँ ही बैठे-बैठे जुगाली (मनन) करता रहूँगा और मस्त बैठा रहूँगा। फिर जब तू जहाँ चाहे चरा ले, जो चाहे चरा दे, ऊंट किसी वस्तु से परहेज या एतराज नहीं करता। मालिक की रजा पर चलता है जितना भार चाहे तू आप ही लाद और आप ही उतार। मार्ग में भी आंवर सांवर की सम्भाल (Balance) बनाना आप ही कर और मेरे सुस्त हो जाने पर, प्रमाद करने पर, हे हुम, हे हुम की (Speed बढाने की आवाज) शोर तान से जगाता भी चलेगा। मैं तो तेरी मुहार से बंधा तेरे पीछे चलता रहा। हे भगवान् ! मैं अपने को तेरा ऊंट इसलिए कहता हूँ कि जैसे ऊंट की कोई कल सीधी नहीं और जितना बड़ा हुआ मूतना ही न सीखा ठीक वही हालत मेरी है। हे प्रभु ! मेरे पिता ! सविता देव ! मेरी इस पुकार पर जरूर मेहर करो।

(१७)

पुकार—प्रभु ओझल न होना

प्रभु दया—हे प्रभु देव ! मैं कई बार कभी-कभी उदास-सा हो जाता रहा कारण कोई भी प्रतीत न होता। मैं आश्चर्य भी करता कि न तो मुझे कोई कष्ट है, न कोई चिन्ता, न किसी वस्तु की कमी। तेरी अपार दया से मुझे सब कुछ प्राप्त होता ही रहता है, बिना माँग के। फिर उदासी क्यों आ जाया करती है। आज मुझे पता लगा, वह भी तेरे इसी देव ने या तेरी ही दिव्य प्रेरक शक्ति ने एकदम सुलझा दिया कि जब तू स्वयं पर्दा डाल ओझल हो जाता है अपनी दिव्य बाणों को सुकेड़ लेता है तो उसी दम मुझे उदासी आ घेरती है। जैसे शिशु जो अपनी मां के ही आश्रित रहने वाला होता है। घर के लम्बे आंगन में माँ से दूर खेलता और फिरता, फुदकता रहता है। उसकी दृष्टि कभी-कभी देख लिया करती है कि मां मौजूद बैठी हुई है। वह फिर अपने खेल में दौड़ा फिरता है और जब मां के समीप बैठे हुए भी मां को बड़ा ओझल पाता है तो अत्यन्त उदासीन दुःखित होकर चिल्लाने लग पड़ता

है। हे देव ! सचमुच आज अपनी उदासी के कारण को सुलझाया तभी तो वेद कहता है भक्त के लिए। **"मां न इन्द्र परा वृणक्"** क्यों जुदा न हो मुझ से ? **भवा नः सधमाद्ये**। अपने संग से आनन्द रस के लिए और भय से रक्षा के लिए मुझ से जुदा न हो। **त्वं न ऊती** तू ही मेरी रक्षा है। तू ही मेरे लिए प्राप्त करने योग्य है। **त्वं इत् न आप्यम्** इस लिए फिर पुकार करता है **मां न इन्द्र परा वृणक्**। यह तो प्रभु समझ में आज आ गया मगर अभी समझ नहीं आई कि मां तो भला अपने और घरेलू काम के लिए ओझल हो जाती है। तू क्यों ओझल हो जाता होगा।

हे प्रभु देव, मैं अब समझा। वह भी तेरी ही दया प्रेरणा से। मैं न समझ सकता था कि तेरा भजन ध्यान करते मन तुझ से अन्य ओर क्यों खिसक जाता है जब तू अपनी दिव्य ज्योति शक्ति या सामर्थ्य को जिस इन्द्रिय से हटा लेता है या सुकेड़ लेता है तब उस में आसुरी शक्ति (संसारी) घुस जाती है। और मन को उधर फेर लेती है। जब तक तेरी शक्ति का वास रहता है तब तक कोई आसुरी गुण नहीं आ सकता। तुझ में ही मन इन्द्रियां एक तार आत्मा के साथ बनी रहती हैं। इसलिए भक्त बार-बार यही पुकार करता है, हे प्रभो ! तू हमें कभी न त्याग "मा न इन्द्र परा वृणक्"। हे प्रभो ! फिर मैं क्या करूं ? मेरे तो बस की बात ही नहीं। जब तू अपनी दया दृष्टि को हटा ले तो मैं किस लग ? असमर्थ-अबोध तेरा आश्रित तो पहले हूँ और कौन बचाए ? बचाने वाला भी तू ही है, सुलझाने वाला भी तू ही है।

(१८)

भक्ति रस तथा वात्सल्य प्यार के लिए प्रार्थना

प्रभु देव ! वेद भगवान् तो भक्ति का रूप यही बार-बार दर्शाता है, कि तेरा भक्त सोमरस तैयार कर रखता है और तुझे बुलाता है, आओ प्रभु देव ! आओ, मेरे इस भक्ति रस को सर्वोत्तम भाव से पान करो। तेरे ही लिए मैंने अलंकृत किया है। मगर मैं तो प्रभु देव उल्टा ही आप से रोजाना प्रार्थना करता हूँ, कि आओ प्रभु देव ! मुझे भक्ति अमृत रस पिलाओ मैं अशक्त अबोध तेरा ही आश्रित हूँ, मुझ में तो न तैयार करने की अक्ल है, न ही रस मेरे पास है। नन्हा बच्चा अबोध बालक को जैसे माँ, प्यारी माँ उसे पकड़ कर अपना सहारा देकर अपने स्तन से लगाकर अमृत-रस पिलाती है, मैं तो वैसा तेरा अबोध, अशक्त, असमर्थ, आश्रित बालक भक्त हूँ और जैसे घुटने टेक घसीट-घसीट लंगड़े पाँव से माँ की गोद को छोड़ कर माँ के आँगन में दौड़ता भागता है और फिर मुड़ कर माँ के पास आ जाता है, बार-बार यही खेल शुगल बनाये रखता है। माँ भी बड़ी प्रसन्न होती है। ठीक ऐसे ही मेरा यह मन भजन करते समय तेरी अमृत गोद को छोड़ कर तेरे ब्रह्माण्ड में (आंगन में) भाग जाता है और फिर तेरे भजन, तेरी शरण में आ जाता है। बार-बार बच्चे की तरह ही करता रहता है, तो क्या प्रभु तू प्रसन्न नहीं होता होगा ? तू तो माता (माता शतक्रतु) है। अपने इस ब्रह्माण्ड रूपी आँगन में तूने ही विषय रूपी खिलौनों को माँ की तरह आगे फेंक रखा है, बच्चा खिलौनों में मस्त हो जाता है। जब भूख प्यास सताती है अथवा मक्खी मच्छर डंक मारता है तो रो कर खिलौनों को छोड़ कर माँ की ओर ही दौड़ता है। वैसे ही मेरा हाल है। प्रभु देव ! आंगन भी तेरा, खिलौने भी तेरे, आश्रय और गोद भी तेरी। प्रभुदेव ! भावना तो मेरी

तेरे चरणों में लगी रहती है और फिर तेरी शरण रोता हुआ दौड़ता हूँ। प्रभु देव ! मैं अशक्त-असमर्थ-अबोध तेरा आश्रित हूँ आप ही संभालिए तेरी रहमत का इच्छुक हूँ (मा न इन्द्र परा वृणक्) साम० २३०।

(१९)

प्रभु की दया व तरस

प्रभु देव ! मुझे मान नहीं चाहिए। केवल दया व तरस माँगता हूँ। आपकी दया और तरस चाहता हूँ। आपके प्यारे संतों, भक्तों, योगियों, तपस्वियों की दया और तरस चाहता हूँ। दीन दुखियों और अपने से छोटे और बराबर वालों से भी दया और तरस चाहता हूँ। मान से मेरा उत्थान कल्याण नहीं हो सकता। दया और तरस से मेरा उत्थान कल्याण निश्चित है। मान मेरे मन को आर्द्र ही नहीं बना सकता। दया और तरस से मेरा मन तुरन्त आर्द्र हो जाता है। मान देने वाले से इतना प्रेम नहीं किया जा सकता जितना कि दया और तरस करने वाले के प्रति श्रद्धा, प्रेम और भक्ति के भाव पैदा हो जाते हैं।

मान से जो खुशी होती है वह अभिमान पैदा करती है और दया तरस से जो खुशी होती है वह अत्यन्त विनम्र और विनीत बना देती है। इसलिए प्रभु देव मैं तेरी और सब तेरी प्रजा की दया और तरस का इच्छुक हूँ।

(२०)

विरक्त भक्त की अनासक्ति के लिए याचना

हे मेरे प्रभो ! जो कमी सदा मैं अपने अन्दर महसूस करता रहता हूँ और जो मुझे दुःखी (Pinch) करती रहती है और आप भी समय पर उसके विनाश के लिए संकेत कर दिया करते हैं, पश्चात्ताप भी होता है, आप की अपार कृपा से हल सूझा है। यदि आप की ही प्रेरणा है, तो अवश्य आप उसे पूरा करेंगे। जैसे अन्य अनेक असम्भव कार्य भी मेरे, अति सुगम, आप ने क्षण में कर दिखाए। मैं डरता रहता था कि फिर मेरा प्रवृत्ति मार्ग न बन जाएँ। यदि आपकी प्रेरणा है तो मेरे निवृत्ति मार्ग में कोई अन्तर न पड़ेगा और आज से ही शुरू हो जायेगा। इसलिए पृथक् फण्ड खोला है, अतिथि भण्डार बना दिया गया है। प्रबन्धकर्ता साथी स्वयं हिसाब और प्रबन्ध रखेगा।

(२१)

अल्पज्ञ भक्त की पुकार

हे मेरे प्रभो ! तेरी इतनी अपार दया होते हुए भी मैं क्या अनुभव करता हूँ कि मैं तेरी प्रार्थना-स्तुति-उपासना तो करता हूँ—मगर सच यह है कि मैं तेरे किसी भी गुण को नहीं पहुँच सका—मेरी तेरे किसी गुण तक रसाई नहीं हो पाती—अर्थात् मैं तेरे किसी एक गुण को अपने अन्दर पूर्ण रूप से पकड़ नहीं सका—धारण नहीं कर सका, कितना आश्चर्य है ?

अपनी अपार दया से मेरे अपराधों को क्षमा भी कर देते हैं। जब मैं पश्चात्ताप से जार-जार रोता हूँ—तब भी तेरी अपार दयालुता तेरे न्याय कर्म देखते

सुनते और स्वयं भान करने हुए अपने साथ बीतने पर उसे धारण नहीं कर सका—तेरा भक्त बनना कितना दुस्तर और कठिन है—तभी तो वेद भगवान् स्वयं कहता है—सामवेद-मंत्र १५४६।

ॐ कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम्। वराय देव मन्यवे॥

ऋग्वेद मंडल ८। सूक्त ८४। मंत्र ४।

हे सर्वव्यापक! हे आध्यात्मिक बल के रक्षक, हे दिव्य गुण विशिष्ट परमेश्वर! आप सर्वश्रेष्ठ हैं—ज्ञान स्वरूप हैं, आपकी स्तुति मैं किस रीति से करूँ? आज तक आपके गुणों तक मेरी पहुँच नहीं हुई है—स्तुति करूँ तो कैसे करूँ।

(२२)

आत्मिक सुख, आत्मिक शान्ति, आत्मिक आनन्द के लिए प्रार्थना

प्रभु देव! आप सकल जगत् के उत्पत्ति कर्त्ता हैं। वह तो आप ही हैं—और रहेंगे। वह आपको ही समझता है—अल्पज्ञ जीव तेरी रचना को समझ ही नहीं सकता—और मैं तो तेरी स्तुति और तेरे गुणगान के लिए शब्द भी तेरे दिये भण्डार से नहीं चुन सकता—लोग बड़ी सुन्दर शैली से सुन्दर शब्दों की रचना कर-कर तेरी स्तुति करते हैं—परन्तु मुझमें यह भी भारी त्रुटि है—कि खुद तो सुन्दर शब्दों की रचना नहीं कर सकता—दूसरों की भी नहीं सुहाती—क्या करूँ। मैं तेरा आश्रित हूँ। बच्चों की तरह, जैसे अन्दर से उद्गार निकलते हैं, वैसे ही तेरे सामने बोल देता हूँ—तू रीझता हो या नहीं—मगर मैं तो अपने मन में रीझ जाता हूँ। तू समग्र ऐश्वर्ययुक्त है—चाहे मेरी जेब में कुछ नहीं मगर मुझे संसारी ऐश्वर्य तो तू दूसरों की जेबों से निकाल देता है—

सबको मेरा खजान्ची बना दिया है—चैक तू काटे, माल खजान्ची दे और मेरा घर भर जाय—तेरी कितनी रहमत है?

परन्तु प्रभु, मुझे दैवी ऐश्वर्य (दम, शम, उपरति, तितिक्षा, ज्ञान और वैराग्य) की जरूरत हर वक्त रहती है। वह तो किसी की जेब से नहीं मिल सकती, न उसका कोई खजान्ची है। वह तो केवल तू स्वयं ही अपनी दया से प्रदान कर सकता है। सो अब तो उसे पूरा कर। भगवान् अपने आश्रित को एक ऐश्वर्य की भिक्षा बख्शो—आप सकल दुःखहर्ता हो, मेरे जिसमानी दुःखों की निवृत्ति के लिए तो प्रभु देव! आप कितने सज्जनों को मेरी सहायता-सेवा-सहानुभूति के लिए भेज देते हो—चाहे दुःख वे दूर नहीं कर सकते—केवल आप ही करने वाले हो—फिर भी सेवा सहायता के लिए २४ घण्टे मौजूद रहते हैं—मगर पाप विनाशक सज्जन साथी-पुत्र-सेवक कोई नहीं मिलता—आप ही एक मात्र पाप-विनाशक हो। संसार के सज्जन मित्र सब असमर्थ हैं। अशक्त हैं। आप मेरी पापवासनाओं को दग्ध कर दो तो कोई भी दुःख जिसमानी न उपजेगा—और न किसी को मेरी सहायता, सेवा के लिए आपको प्रेरणा करनी पड़ेगी न किसी को मेरे लिए चिन्ता और कष्ट होगा। मैं और वे सब बच जायेंगे। अब तो यही भिक्षा दीजिए, वरदान दीजिए। कोई पापवासना रहे ही न। आप सर्व सुखों के भण्डार हो, मुझे हर प्रकार का सुख

आपने प्रदान किया है। जिसे प्रेरणा करते हो वही मुझे सुख देने के लिए अपना पेट काट कर भी अपने आपको मेरे सुख के लिए तन-मन-धन निछावर कर देता है। कोई कमी नहीं रहती—मगर मुझे आत्मिक सुख-आत्मिक शान्ति-आत्मिक आनन्द तो केवल आप ही से मिल सकता है। वह तो किसी के पास नहीं। मेरे सविता देव प्रभो, गुप्त प्रेरक ! जिस साधन से, जिस योग्यता से, जिस अधिकार से यह आत्मिक शान्ति-आत्मिक सुख-परमसुख प्राप्त हो सके—वह-वह साधन की योग्यता और सामर्थ्य मुझे प्रदान कीजिए, और अपने बल आश्रय से उसे अपनाने और कर सकने का अधिकारी बनाइये—

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव, यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

(२३)

भक्ति की विनम्रता

वानप्रस्थ आश्रम

हे मेरे प्रभो ! मांगना तो हुआ ही ! जब जीव अल्पज्ञ और भोक्ता ठहरा और तू है ही दाता, देव, महादेव, जीव का मांगना और भोगना काम है और तेरा मानना और देना काम है। सब मांगते हैं सम्पत्ति, शक्ति और मति—जैसी-जैसी किसी को जरूरत और इच्छा होती है, और मैं प्रभु-आश्रित होता हुआ मांगता हूँ—सम्पत्ति तो मुझे षट् सम्पत्ति प्रदान कर। और सम्पत्ति तो पेट पालने—कारोबार करने के लिए प्रकृति माता दे रही है। तेरी अपार कृपा से बे अन्त रहमत से, योग्यता से अधिक सुख और लाभ प्राप्त कर रहा हूँ—अब तो मुझे आत्म-कल्याणार्थ तेरी दात—दैवी सम्पत्ति की आवश्यकता है—और शक्ति का तू तो भंडार है। सर्वशक्तिमान् है। मुझे इतनी शक्ति अपने गंजखाना से बख्श कि मैं तेरी निरन्तर भक्ति श्रद्धा—अटूट श्रद्धा से करता रहूँ। अपनी रजा पर राजी रहने की शक्ति व साहस दे। हर हाल और हर काल में सन्तुष्ट रहते हुए तेरा धन्यवाद गाता रहूँ—और मतिज्ञान अपने अनन्त ज्ञान से इतना ज्ञान जता कर कि जो तेरे प्रदत्त दान-भक्ति-धर्म-सदाचार-सेवाभाव को कायम रखे, सुरक्षित रखे—तिल मात्र फिसलने न दे। पाप, ताप, सन्ताप से मेरी रक्षा कीजिए—पूज्य गुरुवर योगीराज महाराज के आदेश को पूरा कर सकूं—

व्रत—वानप्रस्थ आश्रम

आज प्रातः भजन प्रार्थना समय मैं प्रभु देव से कह रहा हूँ—प्रभुदेव ! मैं कितना खुश किस्मत हूँ—कि लोग मुझे देखकर प्रसन्न होते हैं—मेरे पसेगैब (अनुपस्थिति में) मेरा जिक्र तारीफ करके खुश होते हैं—वे तो हैं ही मगर तेरी अपार कृपा और भी है कि जो मुझ से घृणा करते हैं, वे भी बहुत बहुत खुश होते हैं। जब वे मेरी गिला शिकायत निन्दा की चर्चा करते हैं। पहले तो मेरे सुख में खुश होते हैं, और दूसरे मेरे दुःख में इससे भी ज्यादा खुश होते हैं। तेरी क्या विचित्र लीला है—मैं ऐसा कहते-कहते बारम्बार नतमस्तक शुक्र अदा करके गद्गद होता रहा।

(२४)

भक्त की पुकार, जीवन मरण समय कायम रहें

नमस्कार

हे प्रभु ! मेरे प्रभुदेव ! तेरी रहमत का तो अन्त नहीं है जो तूने मुझ अपने आश्रित पर करी है और नित्य करता रहता है। कभी-कभी तेरे चरणों में बैठा हुआ और अपने महापुरुषों और आपको सामने सम्मुख पूर्ण तसव्वर करता हुआ भी भजन ध्यान प्रार्थना सब नीरस पाता हूँ। हृदय में आर्द्रता नहीं देखता वाणी तो बड़ी आर्द्र होती है। एक आंसू भी नहीं टपकने पाता। जब तेरी दया बहने लगती है तो पता नहीं कि वही आंसू धारा प्रवाह बहने लग जाते हैं। तू मेरा प्रभु परम पुनीत परम दयालु और महान्-महान् सर्व शक्तिमान् है। तेरे, महात्मा बुद्ध जैसे भक्तों के सामने अंगुलिमाल जैसे खूनी डाकू और ऋषि दयानन्द के सामने वैश्या आते ही छमा-छम आँसू बरसाने लग गई। पाप वासना दग्ध हो गई। ऋषि ने एक ही शब्द अमीचन्द से कहा "अमीचन्द हो तो मोती मगर कीचड़ में पड़े हो।" ऐसी सूई लगी कि रिकार्ड बन कर इन्हीं शब्दों में बजने लगी। तमाम ऐब अमीचन्द के समाप्त हो गये। मेरे सामने आप दोनों महान् शक्तियाँ मेरे महापुरुष और आप होते हुए भी मेरी वासनाओं को दग्ध नहीं कर सकते या करना नहीं चाहते। कोई नियम आपका आपको मान्य हो या आप मेरी वासनाओं को दग्ध करने में असमर्थ या विवश हैं और इन्हें पूरा कराना है, भोग भुगवाना जरूरी है तो मेरे और संस्कार न बढ़ें। मेरी इस व्रत समाप्ति पर मुझे ही समाप्त कर देवें। जो बकाया मेरी आयु इस मनुष्य जन्म में भोग की है उसे किसी ऐसे कुत्ते, पशु-पक्षी आदि में लगा दें जहाँ इन वासनाओं का भोग पूर्ण हो सके और समाप्त हो जाये। मनुष्य जन्म में तो भोग से और वासनाएं पैदा हो जाती हैं, पशुओं में भोग के साथ समाप्त हो जाती हैं। एक प्रार्थना मेरी अवश्य स्वीकार करो। किसी भी जन्म योनि में आप मुझे भेजो, आपका मंगल वरद हाथ मेरी अंगुली को अपना आश्रय दे, पकड़े हुए रहे जैसे अब आश्रित आपने मुझे बनाया, ऐसा सब योनि और सब काल में आपका आश्रित हीं रहूं। किसी के दीन आधीन न होऊं। मेरा अन्त उसी प्रकार करो, जिस प्रकार मेरा जन्म किया। जन्मते मेरा सिर मेरी माता के चरणों में नमस्कार करता आया और तेरे ओ३म् नाम की रट पुकार करता आया। अब मेरे स्वांस—प्राणों का अन्त तेरी चरण शरण बैठे उपासना ध्यान आराधना, प्रार्थना में तेरा नाम पुकारते और मेरे सद् गुरुदेव महापुरुषों के चरणों में नमस्कार करते हुए निकले। मेरी आत्मा नमस्कार पुकार करती हुई परलोक गमन करे। यह मेरी प्रार्थना अवश्य स्वीकार करो। मेरा आदि और अन्त नमस्कार में हो।

(२५)

परमेश्वर की खोज कहां करनी होगी ?

ओं वेनस्तत्पश्यत् परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।

अथर्व० का० २० सूक्त १ मंत्र २

प्रभो ! तुझे किस तरह गाऊं, तू तो दीखता ही नहीं। यह सारा जगत

तेरा ही विस्तार है। जो जगत् का थोड़ा-सा अंश मात्र दिखाई भी देता है तो उसमें भी तू कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। तू है तो अवश्य परन्तु छिपा हुआ है। इच्छा हुई कि तुझे छिप कर ही देखूं जिससे तू मुझे दिखाई दे सके। शायद योगीजन इसीलिए पहाड़ों की कंदराओं और गुहाओं में जाकर तुझे ढूंढ़ते हैं परन्तु तू वहाँ भी नहीं मिला। कंदराओं में भी तो पत्थर ही पत्थर दीखते हैं। वहाँ भी तेरा दर्शन नहीं होता। मुनिजन जंगलों में तेरा ध्यान लगाते हैं परन्तु वहाँ भी दर्शन नहीं देता, वहाँ केवल वृक्ष ही वृक्ष हैं। यदि मैदान में तेरी खोज करता हूँ तो वहाँ खुला स्थान है तू छिप ही नहीं सकता।

अच्छा समुद्र में गोता लगा कर तुझे देखें तो क्या तू दीखेगा? नहीं; नहीं! वहाँ तो बड़े-बड़े मगरमच्छ और अन्य जलजन्तु ही हैं। वहाँ तू कहाँ?

फिर हे प्रभो! अब तू ही बता! कहाँ किस कोठे में किस कुटिया में द्वार बन्द करके मैं तुझे देख सकता हूँ।

नहीं; नहीं; जब मैं तुझ से पूछता हूँ तो नकार (नहीं) में उत्तर मिलता है।

हे जगदीश! तो क्या तू किसी से मिलना ही पसन्द नहीं करता? तेरे पीछे लाखों मनुष्य मारे-मारे फिरते हैं। परन्तु तुझे तनिक भी तरस नहीं आता। प्रभो! तेरा स्वभाव ही अनोखा है। तुझे किसी का डर तो नहीं जो तू प्रकट नहीं होता। तू तो सर्वशक्तिमान् है, जग रचयिता, अजर, अमर और अभय फिर......फिर क्या ऐसे रुलाता रहेगा? प्रभो! कभी मान भी लिया कर। मैं तुझ से धन नहीं मांगता जो तुझे देना पड़ेगा। राज्य नहीं मांगता कि तुझे किसी से लड़ाई करनी पड़ेगी, स्त्री नहीं माँगता कि किसी को प्रेरित करना पड़ेगा, शरीर नहीं मांगता जो तुझे स्वयं बनाना पड़ेगा। मैं तो माँगता हूँ तेरा दर्शन......इसमें तेरा क्या बिगाड़ है? तुझे किसी दूसरे से कहना नहीं पड़ता, तेरा कुछ मोल भी नहीं लगता, कुछ बिगड़ता भी नहीं, पर मेरा सब कुछ सुधर जाता है।

बस...बस...प्रभो! आओ बहुत हो चुकी है। मेरे साथ बहुत हो चुकी··· अब कुछ तरस खाओ, दया करो। कृपानिधे! कृपा करो, सारी आयु रूठे न रहो कभी तो मान भी जाओ, बड़ा उपकार होगा। मुझ निमाणे के मान बनो, मुझ निराश्रय के आश्रय बनो—मुझ निताने की तान तुम ही हो। मुझ अटेक की टेक तुम ही हो। प्रभो मैं त्योटा हूँ मुझे एक तेरी ही ओट है। प्रभो अब कृपा करो...अहा...अहा तेरी कृपा हुई; अतिशय कृपा हुई मैं सुन रहा हूँ...दिल से सुन रहा हूँ। तू अपना रास्ता बता रहा है तू मिलेगा मेरे हृदय की गुफा में ही मिलेगा। मेरे हृदय की गुफा में ही मिलेगा! अच्छा! अच्छा!! ठीक है। यह तो बड़ा सुगम काम है बाहर भी टक्कर न मारनी पड़ी, घर में ही काम बन गया।

हाँ प्रभो! फिर...कैसे...आऊँ...आप कहते हैं...गुफा के रास्ते। वहाँ तो घुप अंधेरा है। वहाँ कोई पहुँच नहीं सकता। गुफा में घोर तिमिर है। मार्ग तंग है, मंजिल दूर है। "श्रद्धा का दीपक बना लो उसमें प्रेम की बत्ती रखो, अभ्यास का तेल डाल दो। ज्ञान की ज्योति से इस दीपक को जला लो, उज्जाला हो जायेगा। अच्छा, फिर इस दीपक के उज्जाले में इस घोर अंधकारमय मार्ग को जल्दी से पार कर पाओगे। हाँ...क्या कहा। जब प्रकाश प्रतीत होने लगेगा तो यह दीपक अपने हाथ से छूट जाएगा।"

वाह प्रभो...वाह, मार्ग तो बड़ा कठिन था परन्तु ढंग तो बड़ा सरल बताया। यह तो बड़ा सरल काम है, बड़ी कृपा हुई। तीन चीजें तो मेरे पास हैं ही—श्रद्धा, प्रेम और अभ्यास ! अब केवल ज्ञान की कमी है। भगवन् ! वह ज्ञान कहाँ से लाऊं ? दीनानाथ, अब थोड़ी-सी वस्तु के लिए अड़चन न लगाओ। यह भी आप ही दे दो, या बता दो। यदि कहीं से मोल मिलती हो तो खरीद ही लूं। नहीं ! नहीं !! यह तो खरीदने की वस्तु नहीं खरीदने से कब मिलेगी ?

प्रभो ! फिर वही—नहीं, नहीं आ गई। न जाने आपको क्या हो गया ? आप तो बड़े दयालु हैं, फिर यह अड़चन कैसी ?

प्रभो ! सच बतलाइये, यह ज्ञान न भी हो तो क्या इन तीन चीजों से किसी को आपका दर्शन नहीं मिला ? यदि पहले किसी को नहीं मिला तो मुझ पर दया करो। मुझे ज्ञान की तलाश में उत्तेजित न करो और कृपा करके दर्शन दे दो। ज्ञान फिर कभी ढूंढ़वा लेना।

क्या मेरी यह विनती भी न मानोगे ? क्या मेरा इतना अधिकार नहीं ? मैं असंख्य वर्षों से भटकता फिरता हूँ, कहीं मुझको खाना नहीं मिलता, कहीं शीत से ठिठुरता हूँ, कपड़ा तक नहीं जुड़ता। कहीं रोने ने मुझे बेहाल कर रखा है। प्रभो, मेरी मान-मर्यादा कुछ न सही, तुम्हारी तो सब कुछ है। कहते हैं जो तुम्हारी शरण आता है वह तुम्हारा प्रकाश पाता है। प्रभो ! भिक्षा दो, जरूर दो, भिखारी को अपने द्वार से न लौटाओ।

प्रभो ! तुम दानियों के भी दाता हो। अच्छा बड़ी कृपा की। क्या कहा ? ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं और ज्ञान मिलेगा गुरु से। प्रभो ! तुम से अच्छा गुरु कहाँ मिलेगा ? मेरा जन्म व्यर्थ न बिगाड़ो। यदि इस जन्म में पूरा गुरु न मिला तो .....संसार नीचों और पाखण्डियों से भरा पड़ा है, पूरे गुरु की मुझे पहचान नहीं। कहीं किसी के कपट जाल में न फँस जाऊँ. तुम्हीं पूरे, परिपूर्ण और सच्चे गुरु हो। नेता और पथ प्रदर्शक हो, तुम्हीं कृपा करो कुछ लेना हो तो इस के बदले ले लो। मैं सब कुछ देने को तैयार हूँ। यह घड़ी मुझे फिर कब हाथ आयेगी ? बड़ी कठिनता से तो तुम इतनी कृपा करने लगे हो। कहो ! क्या यह ज्ञान दान दोगे ?

क्या कहा —मैं क्या दूंगा ? मैं, प्रभो ! मैं, क्या दूंगा ? रुपये मेरे पास नहीं, रोटी घर में है, कपड़े बाजार में हैं। मैं तो तेरे द्वार पर खाली हाथ खड़ा हूँ। कोई ऐसी वस्तु न माँगना प्रभु जो मुझे आपकी शरण त्याग कर कहीं ओर से लानी पड़े और फिर मैं यह अवसर ढूंढ़ता ही रहूँ।

क्या कहा ? तेरा शरीर नहीं चाहता, तेरा धन तथा वस्त्र नहीं चाहता; यह तो मैंने ही तुझे दिये हैं। तू केवल अपनी मैं ही मुझे दे दे। तो तुझे ज्ञान प्राप्त हो जाएगा और तेरी ज्ञान ज्योति जग जाएगी।

वाह रे प्रभु वाह ! खूब कही "मैं" तो दे दूं तुझे और मैं बन जाऊँ कोरा ठन-ठन गोपाल ! फिर संसार के कार्य कैसे करूँ। बालबच्चों को कैसे पालूं ? जीवन-निर्वाह कैसे करूँ ? तेरी प्रार्थना कैसे करूँ ? वाह, वाह प्रभो ! तू तो बड़ा कनफुकुआ गुरु है। तेरा मनोभाव मैं समझ गया कि न यह "मैं" अर्पण करेगा और न मैं दर्शन ही दूंगा। तू तो सारे संसार को ऐसे ही भटकाता है। पर अब मैं

भी तेरे पीछे ही पड़ा हूँ। देखूं तू दर्शन देता है कि नहीं ! तंग आकर आप ही दर्शन देगा।

भला मैं अपनी "मैं" तुझको देदूँ तो........."तू" तेरी "तू" कहाँ समायेगी। मैं हो गया "तू"......तो "तू" भी "मैं" ही हो जाएगा। वाह ! वाह ! वाह !! वाह !! अब मैं समझ गया अहा।

मैं तू हुआ तू मैं हुआ, और अन्य कोई ना रहा।
कैसे कहे कोई भला, मैं और हूँ तू और है।
मैं तन तो तू है आत्मा, मैं आत्मा तू परमात्मा।
मैं तुझ में रमा, तू मुझ में रमा, फिर भेद तुझमें मुझमें क्या
कैसे कहे कोई भला, मैं और हूँ तू और है।
मैं फूल हूँ और बू है तू, कोयल हूँ मैं कू कू है तू।
में क्या नहीं क्या कुछ है तू, मैं कुछ नहीं सब कुछ है तू।
कैसे कोई जाने भला, मैं और हूँ तू और है।

प्रभो, तेरा भला हो, मार्ग तूने सुगम ही बता दिया—अब आगे मेरा भाग्य।

(२६)

प्रभुदेव ! मधुर ब्रह्मज्ञान का आस्वादन करावें

वाह प्रभु देव ! तू धन्य है, तू स्वयं मधु है, तुझ में मधु रस भरा है और जगत् संसार, जो तूने अपनी मधु विद्या से बनाया, उसमें भी मधु ही मधु भरा है। संसारी पुरुष संसार में ही मिठास उपलब्ध करने का प्रयास करता है। जैसे च्यूंटी मिश्री को जिधर से मुंह डाले मीठा ही मीठा पाती है। यदि मनुष्य भी उस मिश्री को मुंह लगाए तो उसे भी मीठा ही लगता है।

तेरा भक्त भी मधु विद्या (ब्रह्म ज्ञान) से मधु रस ही चखना चाहता है। आप किसी भी याचक को इच्छित मधु रस से वंचित नहीं करते। भक्त हो अथवा संसारी पुरुष हो। क्या आश्चर्य है। हे देव ! कि तू ने भक्तों के लिए यह मधु छत्ता बनाया, जहाँ से यह मधु रस (अमृत रस) भक्त चूसता है। यह मधु छत्ता इसके निज सिर में सहस्रार चक्र ही है जिसके एक-एक छिद्र से भिन्न-भिन्न प्रकार का भीना रस (ब्रह्म ज्ञान-भक्ति रस) वह पान करता है या आप पान कराते हो। यह सहस्रार चक्र ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे सहस्राक्ष वेदों में तुझे कहा गया। ऐसे योग साधक को इस अपने देव लोक में समस्त देवताओं की दिव्य शक्तियों में निवास करायें। जिधर यह दिव्य दृष्टि अपने देवता की ओर खुले उसका सारा ज्ञान साक्षात् करायें।

(२७)

पतित पावनी माँ को कहाँ बिठाऊं ?

ओ३म् अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि॥

साम० ५-१-५१

हे माँ ! भक्त और योगी तेरा आह्वान करते हैं, उनमें तो सामर्थ्य होती

होगी तुझे बुलाने, अपने स्थान पर बिठाने की, परन्तु मैं तो माँ ! असमर्थ हूँ। तेरा आश्रित हूँ। मैं कहाँ बुलाऊँ और कहाँ तुझे बिठाऊँ ? तू तो मुझे बिठा सकती है, गोदी में बिठा सकती है, कमर पर उठा सकती है, बगल में दबा सकती है, छाती पर लिटा सकती है। मैं तुझे कहाँ बिठा सकता हूँ ? नन्हा बच्चा, अज्ञानी अबोध बालक, तुझ इतनी महान् माँ को कहाँ बिठाऊँ ? बुला तो सकता हूँ, पुकार भी सकता हूँ। मैं तो जब पुकार करूँगा यही पुकार करूँगा। माँ मुझे अपनी गोदी में बिठा। मैं तो तुझे अपनी विह्वलता और व्याकुलता में बिठा सकता हूँ। और तो मेरे में सामर्थ्य ही नहीं। भक्त और योगी तो स्थान भी पवित्र कर सकते होंगे। मेरा तो स्थान ही तेरी गोदी है, तूने ही अपने लिए भी स्थान साफ करना है और मेरे लिए भी। मुझे तो तू जहाँ भी बिठायेगी मेरे तो अपवित्र अंग वहीं बैठेंगे, फिर मैं क्योंकर बुलाऊँ माँ ?

(२८)

दयालु पिता ! अपने चरणों में बाँधे रखिये

हे मेरे प्रभु दयालु पिता ! आपकी अपार कृपा से मेरा यह व्रत निर्विघ्न सम्पूर्ण हो गया। इस व्रत में जिस अपनी दयालुता से मुझे भरपूर कर दिया, नन्हे बालक के नन्हे हाथों में कितना कुछ समा सकता है। माता पिता तो अपनी बड़ी मुट्ठी और दोनों बुक भर कर देना चाहते हैं, पर नन्हे बच्चे के नन्हे हाथ तो जरा मात्र से भर जाते हैं और वह उसी में गद्‌गद हो जाता है। प्रभु देव ! मुझ अबोध बालक के मन और बुद्धि का वही हाल था। तेरी देन तो नाथ बड़े हाथों की रही, अब ज्यों-ज्यों मेरी बुद्धि और मन का आप विकास करोगे त्यों-त्यों मेरी मांग भी बढ़ेगी। इस समय तो प्रभु देव ! आपने जो अपना सम्बन्ध रूप अप्रकट रख कर मेरे आत्मा जीवन का उत्थान व कल्याण किया। शिशुकाल से आप मेरे गुप्त पिता के रूप में मुझे अपनी शरीर जननी माता के द्वारा मेरा भविष्य उसके मुखारबिन्द से आशीर्वाद और लोरी और खेल खुशी के रूप में कहलवाते रहे और फिर मुझे गायत्री सावित्री माता की शरण प्रदान कर दी और मध्यकाल से अब तक आप गुप्त पिता और सावित्री माता मुझे धर्म और आत्म-जीवन में बढ़ाते रहे। इस व्रत में आपने अपना रूप पिता का प्रकट करके मुझे प्रभु आश्रित शब्द और नाम अर्थ का साक्षात् परिचय दिया। ओह ! मेरे इष्ट देव ! सविता ! मेरे प्रभु सच्चिदानन्द गुरुदेव ! मेरे सच्चे पालक पोषक और आत्म-ज्ञान के प्रेरक और आत्म-बल दाता पिता ! अब मेरी यह विनय है कि संसार के लोग तो बन्धन से छूटना चाहते हैं पर मैं अपने बंधन की प्रार्थना करता हूँ। मुझे अब अपने चरणों के साथ अपने प्रेम की डोरी से ऐसा बाँध रखो कि मैं छूट ही न सकूं। सदा आपके चरणों के साथ बंधा ही रहूँ जैसे मायावी पुरुष अपने पुत्र परिवार को धन से बांधे हुए रखते हैं। छुड़वाने पर भी वे नहीं छूट सकते। जैसे नन्हा बच्चा माता-पिता की जरा-सी ओझल दृष्टि में घबरा जाता, व्याकुल हो जाता है, ऐसे मुझे अपनी दया प्रेम के नाते से बांध रखिए। बस मेरी यही प्रार्थना है, इसे स्वीकार कीजिए, सबका बेड़ा पार कीजिए।

(२९)

प्रभु देव, आपसे कोई सम्बन्ध जीव का पूरा नहीं उतरता

हे मेरे प्रभो ! मैं बहुत विचारता रहा कि तू मेरा क्या लगता है ? कहने को तो मैं तुझे सब कुछ कह देता हूँ, पुकार लेता हूँ पर आज तक जनती प्राप्ति नहीं हुई। मैं कहता हूँ तू मेरा गुरु है, परम गुरु है। इधर मैं देखता हूँ कि मैं कोरे का कोरा हूँ। जिसका तू गुरु हो उसे फिर अज्ञान शेष रहे ? असंभव है, असंभव है। इसलिए प्रभो ! जब मैं तुझे गुरु पुकारता होऊँगा तो सुनने वाले अवश्य हँसी उड़ाते होंगे। मैं तुझे आचार्य के नाम से भी कभी-कभी संबोधित करता हूँ। पर प्रभु, यह भी एक मन बहलावा है। जो तुझ आचार्य की शरण में हो फिर उसके सत्याचरण में कमी कहाँ ? मैं तो अभी सत्य के पुजारियों के पांव के तले धूलि माथे पर लगाने को ढूंढ़ रह रहा हूँ। यह सम्बन्ध मेरा तेरा न जुड़ा। हाँ, मालिक भी तुझे ही बनाता हूँ, पर नौकर होकर मालिक की आज्ञा न माने वह नौकर और वह मालिक कैसा ? मैं तो तेरी अनेक आज्ञाओं को टाल जाता हूँ, और बेपरवाही कर लेता हूँ। भगवान्, यह नाता भी बेमेल है। तुझे अपना राजा और न्यायाधीश भी जानता हूँ, परन्तु वह प्रजा जो राजा के सम्मुख उसकी विद्रोही बनी रहे और प्रजा होकर तुझे तेरा 'कर' न देवे वह प्रजा नहीं हो सकती। मैं अभी तेरी प्रजा कहलाने का अधिकारी नहीं। मैं तुझे ऐसा तो बार-बार पुकारता हूँ—हे मेरी माता ! हे मेरे पिता ! इससे तो मुझे स्वयं लज्जा आती है। यदि तेरा पुत्र होता तो कभी तेरी गोद में न बैठता ? तेरी प्रेम भरी लोरी का आनन्द न लूटता ? तुझ से रूठ न जाता ? और तुझे मनाने में व्याकुल कर देता ? तू मेरी माता नहीं बना, और पिता भी नहीं बना। नहीं तो तेरे कंधों पर सवार होता और तू आप मुझे उठाए फिरता और तुझे कहता मेरे सिर से अपना सिर मिला और मैं तुझ से बढ़ गया—और तू आप ही खुश होकर स्वीकारता कि हाँ पुत्र, मेरी प्यारी आत्मा, तू मुझसे बढ़ गई। फिर मैं सोचता हूँ—आखिर तू कुछ तो मेरा लगता ही है।

यही उत्तर मिलता है कि अवश्य ही तू शाह है और मैं देनदार, परन्तु पिता ! शाह कैसा जिसे देने वाला वापस ही नहीं देता। इस बात का अभी अभी उत्तर मिला है जबकि यात्री गाड़ी सात बजे शाम को अपनी मंजिल पर पहुँचने के लिए उत्तर की ओर चल पड़ी है कि तू शाह है पर तेरा नाम लोभीशाह है। मैं अब समझा कि ठीक है कि लोभियों के बाजार में दिवालिये कब भूखों मर सकते हैं ? दिन दूनी और रात चौगुनी उनको संपत्ति मिलती है। उधार मिलता है। अच्छा तेरा विचार है कि संगीन सूद से वसूल करूँगा।

(३०)

दयालुताओं के प्रति कृतज्ञता आर्द्रता

हे दयानिधे ! तेरी दया बेअन्त है। तेरी कृपा महती है तेरा कोट्यनुकोटि धन्यवाद गाता हुआ तुझे बारम्बार नमस्कार करता हूँ। मेरे प्रभो, मैं तेरी दयाओं को क्या गिनाऊँ ? मुझ पर तो तू बहुत ही विशेष दया करता है। मैं समझता हूँ यह तेरी ऐसी दया केवल मेरे लिए ही है। मैं तुलना कर रहा हूं तो ऐसे प्रतीत हो रहा है कि यह तेरी विशेष दया मेरे लिए ही है। परन्तु और भी अनेकों पर ऐसी

तेरी दया होगी। मैं तो शिशु की भांति ऐसा समझ रहा हूँ जो पिता के कंधे पर बैठा हुआ चाँदनी रात्रि में चलता हुआ कहता है पिता से चाँद मेरे पीछे पीछे चल रहा है, किंचित् ठहर जाओ। पिता ठहर जाता है। बच्चा कहता है कि पिता जी देखो चाँद भी ठहर गया। यद्यपि वह चन्द्र सबको अपने पीछे पीछे चलता दीखता है।

यही तो प्रभो तेरी विशेषता है। जिन पर दया है वे ही सब ऐसा मेरी भांति समझते होंगे। हे नाथ ! मेरे लिए तू कितने सरल मार्ग बना देता है, तेरी दया कैसे बेअन्त न कहूं। मैं जब बाल्य काल से आज पर्यन्त अपने जीवन की घटनाओं पर दृष्टिपात करता हूँ तो यही पाता हूँ कि तू अपने आप मेरा मार्ग स्वयं स्वच्छ करता चला आ रहा है। मैं निस्संकोच, बिना विचारे अंधाधुंध चला आ रहा हूँ। पीछे मुझे ज्ञात होता है कि तू स्वयं अपनी उंगली से जैसे बच्चे को पिता ले चलता है और बच्चे को कुछ भी पता नहीं होता कि क्यों और कहाँ जा रहा है। आगे तो मैं तेरी दयाओं की तुलना अपने जैसे मनुष्यों से करता रहा और तुझे धन्यवाद देता रहा आज तो मैं तेरी बेअन्त दयाओं की तुलना उच्च कोटि के मेरे श्रद्धेय महात्माओं (जिनको देखकर अथवा स्वप्न में दर्शन करके अपना सौभाग्य समझता रहता हूँ) से करके यही कह रहा हूँ कि तेरी दया मुझ पर विशेष है। हे मेरे प्रभो ! जहाँ इतनी अपारदया मैं आज अनुभव कर रहा हूँ वहाँ मैं विनय पूर्वक प्रर्थना करता हूँ। मुझे कारण प्रतीत नहीं होता। जिस वस्तु को मैंने त्याग दिया हुआहै अथवा प्रतिज्ञा की हुई अथवा उपयोगी से उपयोगी वस्तु भी जिन्हें मैं बोझ समझता हूँ अथवा व्यर्थ का प्रयोग समझता हूँ उनके न मिलने पर किसी के न पूछने पर मुझे अति हर्ष होता है। कभी कभी जान बूझ कर तेरे दरबार में प्रार्थना किया करता हूँ कि मुझे कोई व्यक्ति कहे ही न—पूछे ही न। जब ऐसा हो जाता है तो मैं तेरा धन्यवाद करता हूँ। जहाँ मैं अपने लिए आवश्यकता समझता हूँ और दूसरे का कर्तव्य समझता हूँ उसमें जब दूसरा उपेक्षा करता है अथवा जानकर, अथवा संभवतः मुझे इस वृत्ति का समझ कर अथवा मेरे किसी परिचित मित्र से पूछ कर वह मेरी आवश्यकता अथवा आशा के विरुद्ध पाया जाता है तो अवश्य मुझे बहुत महसूस होता है। एक बार नहीं दो बार नहीं, अपितु रह रह कर कई बार स्मरण आता है। आज इस समय मैं बहुत ही महसूस कर रहा हूँ कि प्रभु मुझे में यह त्रुटि है, न्यूनता है, दोष है, बहुतेरा मन को समझा रहा हूँ कि भोले, तू क्यों अपने प्रभु से वृत्ति हटा कर ऐसा चिन्तन कर रहा है। अपने प्रिय के नाम दान को अपनी जिह्वा से हटा कर अन्यों की त्रुटि निकालने में जिह्वा के अग्र भाग को चला रहा है। कुछ मिनटों के लिए रुक जाता है, तुझ में लग जाता है। फिर उसे वही रट स्मरण हो जाती है।

देव, दया कीजिए अब मैं तेरी दयाओं को स्मरण करके कह रहा हूँ कि जब तू गणपति और लाजपत के विवाह के लिए जतोई गया तो किस से यात्रा व्ययार्थ माँगा था ? किस ने तुझ से पूछा ?

(३१)

परमेश्वर की दया से ही सूखे मस्तिष्क हरे होते हैं !

हे प्रभु देव ! वेदमें स्थान-स्थान परआदेश है वेद मंत्रों द्वारा स्तुति करो, अर्चना

करो। वेद मंत्रों से अमृत रस पान करो! रस तो कभी-कभी आता ही था मगर समझ आई तो तेरी ही प्रेरक शक्ति द्वारा कि मन्त्रों में क्यों अमृत रस सचमुच भरा है। ऋषि मुनि जीवन पर्यन्त एक सूक्त में मस्त रहते थे। हे प्रभो! आज पाया कि अमृत रस तो प्रत्येक मंत्र में है मगर मुझे रस उसी मंत्र से झरता और बार-बार चूता हुआ शब्द-शब्द में टपकता और रोमांच करता दिखाई देता है जिस की मुझे ठीक समझ आ गई और वह समझ भी मेरी उद्देश्य पूर्ति दुःख निवृत्ति का पूरा साधन नजर पड़ी और फिर तूने स्वयं अपनी अपार दया से उसी मंत्र और शब्द-शब्द के रस को मेरे उसी स्थान और नाड़ी में बहा दिया। वह भर गया और उमड़-उमड़ फूट-फूट पंचनदियों से बाहर बहने भी लग पड़ा। अन्दर और बाहर रस आस्वादन से सिवाय शब्द और शब्द के अमृत रस के और पता ही न लगा। यह भी देख लिया। अर्थ की समझ तो आई उद्देश्य पूर्ति और दुःख निवृत्ति का साधन भी समझ लिया—परन्तु तेरी दया विद्यमान न होने से वह खुश्क झरना सा सूखा, फीका प्रतीत किया। भगवान्! तेरी दया ही प्रमुख है। तेरी दया हो जाए तो सब सूखे भी हरे भरे हो जाते हैं। आज साक्षात् पाया कि वेद विद्या विज्ञान सरस्वती क्यों कहलाता है?

'स' सुन्दर सुहावन मीठा 'र' रस वाला—सरस्वती याग करने वाले सदा मस्त रहते हैं। वाह रे! दयानन्द!—वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना तू ने क्यों आर्यों का परम धर्म लिखा!

(३२)

भक्ति-उपासना दुःख में भी प्रभुदया की प्रतीति का होना

हे प्रभुदेव! तेरी रहमत का कोई अन्त नहीं—जो तू मुझ पर करता है। मुझे २-६-७२ को चोट का लगना और सुन्दरपुर में लगना—का रहस्य आज तूने अपनी अपार दया से सुझाया। चोट तो मुझे अपने पूर्व कर्मफल रूप में लगनी ही थी—और ठीक उसी दिन उसी समय लगनी थी। २-६ का प्रोग्राम मेरा पहले अपने विचार से यमुनानगर का था—अगर अपने विचार से वहाँ होता—तो ऐसी चोट लगने पर लाला खैराती राम जी को परेशानी होती—वह अस्पताल में दाखिल कराते। चाहे वे सब सेवा करते—मगर वे अकेले थे। अस्पताल के हालात के आधीन रहना पड़ता। कोई सेवा करने वाला न होता, और प्रेमियों को बहुत दूर से कष्ट और खर्च उठाना पड़ता। लाला खैराती राम जी को भी बहुत कष्ट सबका बर्दाश्त करना पड़ता। तसल्लीबख्श इलाज न होता। और यह शिविर साधना भी रुक जाती, और दूर-दूर से आनेवालों को कष्ट होता या इनको समाचार भेजने पड़ते—तब भी सबको न मिल सकते—वाह रे प्रभु! तेरी कितनी अपार दया हो गई कि सब प्रोग्राम कैन्सिल होकर सुन्दरपुर पहुँचने की प्रेरणा हुई। २-६को सुन्दरपुर में चोट लगने से मुझे तो चोट लगी मगर दूसरों को परेशानी नहीं उठानी पड़ी—डॉक्टर ऋषिकेश जी जहाँ डॉक्टर मुआलिज (चिकित्सक) मेरे हैं—वहाँ सेवक-प्रभु का काम भी करते हैं—और माता-पिता का फर्ज भी अन्जाम देते हैं—खर्च अखराजात और ऊपर की सब सहायता तकलीफ माता-पिता को ही करनी पड़ती है—वह भी वह खुद ही करते हैं—और फिर अपने आश्रम में होने से साधना भी चल रही है—और अपने सब आदमी सेवा भी मेरी कर रहे हैं—और डॉ० साहबान भी बहुत से

सत्संगी देखभाल करते हैं—सबको सहूलित रहती है। यही अपार कृपा प्रभु की समझ रहा हूँ। मेरे प्रभुदेव ! कर्मफलदाता रूप से मेरे गोडे में निवास कर रहे हैं—और मेरे पाप कर्मों को उतरवा रहे हैं—और प्रभुदेव स्वयं मेरे प्रेमियों को खींच कर इस घुटने की सेवा करा रहे हैं—इसलिए उन सब प्रेमी सेवा करने वालों की सेवा करने में आनन्द, उस आनन्द रूप प्रभु से प्राप्त हो रहा है। क्या प्रभु लीला और अपार दया है।

(३३)

उपासना प्रार्थना नीरस बने तो प्रभु दरबार में पुकार करो

हे प्रभो ! आज क्या हो गया ? घण्टों से खाली जाप और कोरी प्रार्थना नीरस बन रही है—आप समवयस्क होते तो चरण कमल पकड़ रखता, माथा चरणों में तब तक टिकाये रखता, जब तक आप स्वयं न उठाते। वाणी के शब्द भी हमारे आपको रिझाने में असमर्थ हैं। आत्मभाव से आप तक पहुँच हो सकती है। अब आत्मा तो है पुकार कर रही, मगर इसके भावों का भी प्रभाव नहीं पड़ रहा। अब मालूम हुआ कि मेरा तो कुछ भी नहीं। आप जैसे औषधि से सत्ता खींच लेते हैं, और वह असर नहीं करती, ऐसे ही आप जब स्वयं आत्मभाव में प्रविष्ट होते हैं तब वह भाव आर्द्र का कर देते हैं और भक्ति को रसमय बना देते हैं। अब मैं तो प्रभु ! तेरा आश्रित हूँ, और भाव कहाँ से लाऊँ ? भगवान् ! कृपा करो, दया करो। उठाते-जगाते भी आप हो, उत्साह से अपने भजन चरणशरण में बिठाते भी आप हो। फिर प्रार्थना-उपासना में मेरी आत्मा में वह भाव क्यों प्रविष्ट नहीं करते हो ? मैं तो इतना ऊँचा नहीं पहुँचा—कि कह दूँ—अच्छा ! तेरी जैसी इच्छा है—वही ठीक है और कामों में तो कह देता हूँ, इस भजन प्रार्थना के लिए ऐसी अभी बुद्धि नहीं बनी। नाथ ! मैं तो केवल मात्र तेरे तरस पर पला हूँ—बढ़ा हूँ—पढ़ा हूँ—मेरा तो अपना लँगोट तक भी नहीं कि सुख के सामान तेरी प्रेरणा से तेरे भगत भक्तिभाव से पहुँचाते रहते हैं। मुझे स्वयं समझ नहीं आती, कभी-कभी तू क्यों ऐसा नीरस कर देता है। कारण सोचता हूँ नजर ही नहीं आता। दयानिधे ! दया करो, दया करो, दया करो।

(३४)

प्रभु आश्रितों की चार श्रेणियाँ

हे मेरे दया के भण्डार प्रभो ! मुझे बहुत बार लज्जा आती है जब कोई मनुष्य लाचार, विवशता का रूप बना याचक के रूप में कुटिया पर आकर अथवा चलते-चलते मार्ग में तेरे नाम पर याचना कर देता है कि प्रभु के वास्ते "मैं निर्धन हूँ मुझे कुछ दो"—कभी तो लाचार विवश की मनमाँगी वस्तु मेरे पास नहीं होती, कभी मेरा दिल नहीं करता और पश्चात् मैं पछताता हूँ कि तू भी तो प्रभु आश्रित और वह लाचार भी तेरी भाँति प्रभु आश्रित है। तेरे ही प्रभु का नाम लेकर अपनी अधिकारिता जतला अपना हक माँगता है। तूने क्यों नहीं दिया ? जब तेरे पास था भी।

भगवन् ! अनेक बार ऐसा हो जाता है और मैं डावांडोल हो जाता हूँ। मेरी बुद्धि मुझे कोई मार्ग नहीं दिखाती। मैं आपके ही आश्रित हूँ। कृपा करो, मेरा

मार्ग प्रदर्शन करो प्रभो ! भक्त प्रभु के नाम पर बिका हुआ होता है उसका शरीर, उसका मन, उसकी आत्मा और उसकी सारी संपत्ति (सर्वस्व) उसका प्रभु के नाम पर अर्पण होता है। जैसे देश भक्त का तन-मन-धन सब देश अर्पण होता है; हे सविता देव प्रभो ! मेरा तो पुन: कोरा जीवन हुआ न तो मैं किसी समाज के काम आया न किसी जाति को दिया न देश पर मर मिटा, न तेरे नाम पर अर्पण हुआ। जब एक ताँबे का पैसा देने से भी कतरा गया तो फिर मेरा कैसा पूजन भक्ति तुझे क्या प्रतीत होता होगा। जब मैं तेरे नाम की ओट, तेरे नाम का आश्रय लेकर याचक से कान अनसुने और मुख मोड़ कर चल देता हूँ। आज तो प्रभो ! तेरे चरणों में बैठ यह बात अचानक अखरी और उभर रही है। जब वस्तु पास नहीं होती और कोई याचक माँगता है तो शरम आ जाती है कि मेरे पास नहीं। मैं याचक को खाली लौटा रहा हूँ। परन्तु जब पास होने पर कतराता हूँ तो बाद में लज्जा आती है। मेरी गायत्री (इष्ट) के सविता देव गुप्त प्रेरक प्रभो ! मेरा मार्ग प्रदर्शन करो, मेरा मार्ग संरक्षण करो।

यह लज्जा झूठी लज्जा है। अपने मन से उठ रही है। अपनी Position (स्थिति) के अहंकार के कारण लज्जा है कि मैं प्रभु आश्रित हूँ और फिर प्रभु की वस्तु को प्रभु नाम के आश्रय वालों को नहीं देता अथवा मेरे दर से याचक खाली जा रहा है।

प्रभु आश्रित का चिह्न है प्रभु के अतिरिक्त और किसी से न माँगना, मुख से न माँगना, हाथ से न माँगना, आँख से न माँगना, प्राण से श्वांस से न माँगना अपितु संकल्प से भी न माँगना। यह संकल्प भी न करना कि अमुक वस्तु, अमुक मनुष्य मुझको ला देवे। **उत्तम सच्चा प्रभु आश्रित** तो वह है जो छोटे बालक की भाँति कोई इच्छा प्रकट नहीं करता, वह इच्छा ही नहीं करता। माता अपने आप उसकी आवश्यकताओं, इच्छाओं की समय पर सुधि लेती और उसे देती है।

मध्यम प्रभु आश्रित वह है जो बड़े बच्चे की भाँति सब कुछ अपनी माता से माँगता है और माता उसे उचित वस्तु अवसर पर देती है। कभी इन्कार भी कर देती है परन्तु बालक दोनों में संतुष्ट रहता है। माता की इच्छा को अपने लिए उत्तम और उपयुक्त समझता है। ऐसे ही आश्रित। परन्तु जैसे कोई-कोई बालक अपनी माँग न मिलने पर रोता, दु:ख करता, हठ करता है। माँ उसे पूर्ण तो कर देती है परन्तु बालक का संस्कार बिगड़ जाता है। ऐसे ही आश्रित का भी बिगड़ जाता है।

अधम आश्रित वह है जो उस बालक की भांति जो अपने माता पिता के संबंधियों, मित्रों के पास जाता है। इस इच्छा (भाव) से कि वह इसको इसके माता पिता के संबंध पर खिलाएंगे पिलाएंगे, पैसे देंगे।

निकृष्ट और नीच आश्रित—वह जो अपने माता पिता के संबंध पर माँगते हैं और लोक लज्जा से उनको मिल जाता है। दानी लोग दे देते हैं। ये दर्जा आश्रित का अपने आश्रय दाता को बदनाम करने वाला होता है। यह प्रभु आश्रित नहीं होते, ये ईर्ष्यालु लोभी आलसी कामचोर देश के लिए बोझ तथा अपने भविष्य को धूलि में मिलाने वाले। बजाय आश्रित के वे भिखारी कहलाते हैं किसी की दृष्टि में मान की नजरों से नहीं देखे जाते।

हाँ, इनसे कटु वचन से इन्कार करना अथवा बोलना तो एक पाप खरीद करना है। परन्तु न देना इनकी मुख माँगी वस्तु को जो इससे किसी दूसरे उत्तम काम में लगाने की संभावना से रखी हुई है पाप नहीं, लज्जा नहीं करनी। प्रयत्न करो कि कोई ऐसा याचक तुमसे खाली न जाए। ऐसा भूखा न जाए जो तुम्हारा प्रश्न सुझाने आया हो। तथा मैं इसी रूप में वस रहा हूँ इसलिए पहचान न कर सकने के कारण मेरे भक्त किसी को खाली न भेजते थे—धन नहीं तो अन्न—अन्न नहीं तो छोले—छोले नहीं तो पानी—पानी नहीं तो मधुर वाणी से याचक को प्रसन्न करते थे। तथा जब वस्तु ही पास नहीं तथा तुम जो रखते नहीं, माँगने वाला भिक्षुक है तो भिक्षुक को किसी और स्थान से मिल ही जायेगा। हाँ, समझो कि प्रभु परीक्षा ले रहे हैं। भारी भूल है। भगवान् अपने भक्त की ऐसी परीक्षा नहीं करता। जब उसे विदित है कि यह वस्तु इसके पास नहीं। भक्त तो भगवान् की परीक्षा भले ही करे परन्तु भगवान् तो तब करे जब वह देवे और फिर अपने लिए माँगे जब माता पिता अपने बालक की परीक्षा लेते हैं उसको मिठाई दी पैसा दिया पुनः हाथ पसार कर माँगा कि मुझको भी दो भगवान् तो वास्तव में माता पिता का स्वरूप है। भक्त और भगवान का रिश्ता माता और पुत्र का रहता है।

(३५)

भक्त को विकल्प नहीं परन्तु संतोष ही शोभा देगा

ओं चित्रं देवानामुद्गादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षँ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥

यजु० ७।४२

आहा! क्या अद्भुत परमात्मा है। जो जंगल और स्थावर जगत् में व्यापक, विद्वानों को श्रद्धा पूर्वक प्राप्त और अति बलवान् है। स्वयं प्रकाशवान् होकर सर्वत्र और श्रेष्ठ पुरुषों तथा बिजली का भी प्रकाशक है। प्रकाश सहित तथा प्रकाश रहित लोकों और उनके मध्यस्थ लोकों का चारों ओर से धारण कर रक्षा करने वाला है।

प्रभो तू कैसा है? जो तू चाहता है वही होने देता है। जिसे तू नहीं चाहता वह लाख यत्न करने पर भी नहीं होने पाता। भला मैं जो तेरा आश्रित बना, क्या लाभ मुझे हुआ? जब तेरा आश्रित भी अपनी इच्छा शुभेच्छा पुण्य संकल्प को ही पूर्ण न करा सके।

अरे आश्रित! तू भूल कर रहा है। जब तू मेरा आश्रित बन गया फिर इच्छा और संकल्प कैसा? चाहे शुभ भी हो। जब शुभ किया तो कभी अशुभ भी वासना उठगी। क्या मैं तेरा और तेरी इच्छाओं का बाधित हो जाऊं? मैं तेरा आश्रय हूँ या तेरी इच्छाओं का भी आश्रय हूँ? इस भूल को निकाल दे।

आश्रित का काम संकल्प विकल्प करना नहीं है। तेरा शरीर मेरे आश्रित है तो भोग स्वतः अदृष्ट पहुँच जायेगा, जैसा इसको अनुकूल होगा। तेरा अनुकूल या प्रतिकूल कहने का अब अधिकार नहीं—तुझे वस्तु के अच्छे बुरे कहने का अधिकार नहीं। जब प्रभु आश्रित आश्रित बनना चाहता है, तेरे मन में संकल्प अपना ही उठता रहा तो संकल्प तेरे आश्रित हो गया। जब तू स्वयं आश्रित है तो क्यों

किसी दूसरी वस्तु को अपने आश्रित रखता या समझता है। बस, जब मन से ऐसा संकल्प विकल्प हटा दिया तो अब मन का गिरना या उठना क्या रहा उसकी तो अंतिम अवस्था पहुँच गई।

शेष रहा आत्मा वह तो है ही पहले से मेरा। तू कौन लगता है ? किसी का क्या लगता है ? शरीर का तू क्या लगता है ? जब शरीर को तू बना नहीं सकता, उसका भोग तेरे ज्ञान में नहीं है, फिर तू शरीर का क्या लगा ? तनिक सोच भी। शरीर तो मेरी दिव्य शक्तियों का अंश है मन भी तेरा नहीं। तू मन का क्या लगता है ? तेरा और उसका मेल ही नहीं बनता। तू अमर, वह मरणशील। जैसे तू मेरी गोद में बैठ सकता है वह भान भी नहीं कर सकता—तू तो आत्मा है। मेरी निज आत्मा है। फिर तुझे काहे की फिक्र और काहे की चिन्ता।

हे भगवान् ! महिमा महान् ! करुणा निधान ! धन्य हो, धन्य हो। मैं तो आज १५ दिनों से गिले और शिकायतें इकट्ठी किए बैठा था कि तूने मुझे व्रत में बिठा दिया और फिर मेरी सुध भी न ली—मेरा व्रत ऐसे ही चला गया। चन्द्रमा ने पूर्णता प्राप्त कर ली, तेज और सौंदर्य में (पूर्णता) प्राप्त कर ली और तेरे चरणों में बैठा १५ दिन में मलाल (उदासीनता) और जवाल (अवनति) में मुझे हलाल (मृतप्राय) कर दिया, न कोई विशेष रहा, न प्रेम के आँसू बहाये, न कोई रंगीले गीत गाये, न कोई गुटका लिखा, न पिछले लिखे को सँवारा। तूने उलटे ऐसी झाड़ दी कि मेरी सारी शेखी (गर्व) झड़ गई। फिर भी धन्यवाद है कि आज तो अपने रूप, अपनी शान का भान कराया। मुझे आश्रित शब्द की समझ आ गई। यही पर्याप्त है।

भगवन्, अब कृपा करो जैसा उपदेश महाराज ने प्रदान किया वैसा बना दो। वैसा बना दो जिससे न तुझे गिला सुनना पड़े—न मुझे गिला करना पड़े। तेरे मद (नशे) में मस्त हो जाऊँ।

(३६)

प्रार्थना २०० दिन के मौन व्रत खोलने पर

ओं ओं ओं—ओं परब्रह्मपरमात्मने नमः।

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, सब सुखों के दाता परमेश्वर, सकल दुःखहर्ता, विघ्वविनाशक, सब सुखों के भण्डार प्रभो ! कृपा करके हमारे संपूर्ण दुर्गुणों दुर्व्यसनों, दुर्वासनाओं, कुचेष्टाओं, कुसंस्कारों दुख-दर्दों, क्लेशों, संकटों और पीड़ाओं को, दुर्दिनों को दूर कर दीजिये और जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं वे सब हमको प्राप्त कराइये।

हे दयालुदेव ! आज का दिवस रविवार के पवित्र दिवस के प्रातःकाल के सुन्दर और सुहावने समय में इस भक्ति साधन आश्रम की यज्ञशाला के पवित्र स्थान पर शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को हम सब तेरे अबोध बालक तेरे पवित्र चरणों में नतमस्तक होकर प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु देव ! आपका आश्रित यह जीव, यह शरीर जो आपकी पवित्र प्रेरणा से आपके पवित्र चरणों में निरन्तर आपकी दात को प्राप्त करने के लिये २०० दिवस एकान्त में रहा, कल उसकी समाप्ति और आज व्रत के खोलने के लिए इस निमित्त से सब यज्ञ प्रेमी, वेद और धर्म प्रेमी,

मुझे आशीर्वाद देने के लिए तेरे द्वार का आश्रय लेकर उपस्थित हुए हैं। हे दयालु देव ! वह पवित्र वाणी इस लिए पवित्र है कि तेरे नाम का उच्चारण करती है, तेरे वेद की अमृतवाणी का उच्चारण करती है, तेरे नाम की महिमा का गान करती है, इसलिए यह तेरी शक्ति और ज्योति से पवित्र हो जाती है। हे दयालु देव ! वाणी, यह मनुष्य का स्वत्व है, बिना वाणी मनुष्य, मनुष्य नहीं बन सकता, मनुष्य को मनुष्य बनाने वाली, मनुष्य को देवता बनाने वाली, तुझे इस प्रकार खींचने वाली इस वाणी में वह चुम्बक है जो मुझे इस प्रकार खींच लेता है जैसे एक बिल्कुल नन्हा नादान बालक अपनी मंगलमयी माता को खींच लेता है। वही वाणी २०० दिवस तक मेरे उत्थान और कल्याण के लिए आपने बन्द कर दी।

वाणी बिना बल के नहीं बोल सकती। धनी लोग बोलते हैं तो धन के बल पर उनके शब्द निकलते हैं, उनकी वाणी से उनका अहम् और मम प्रत्यक्ष प्रकट हो जाता है। एक अहंकारी राजदरबारी और कर्मचारी जब बोलता है तो वह शासन के बल पर बोलता है, उसकी वाणी प्रत्यक्ष प्रकट करती है कि यह अधिकारी और शासक है। जब वकील या बैरिस्टर बोलता है तो वह अपनी बुद्धि के बल पर बोलता है, उसकी वाणी उसकी बुद्धि को ऐसा प्रकट करती है जो अपनी छाप लगा देती है। विद्वान् की वाणी विद्या के बल पर बोलती है। साधारण आदमी जब बोलता है वह अपने प्राण के बल पर बोलता है। ऐ ओ नाथ ! मैं किस बल पर बोलूं ? मेरे पास न धन का बल, न शासन का बल, न बुद्धि का बल है, बोलूं तो किस बल पर बोलूं !

हे दयालु देव ! मैं तो प्रभु आश्रित हूँ, प्रभु तेरे ही बल पर वाणी बोल सकती है, नहीं तो इसमें सामर्थ्य क्या है ? हे देव ! तू बल दे, क्या बल दे, अपना बल दे। तेरा बल क्या है ? तू सर्वशक्तिमान् है, तेरी वाणी सत्य और मधुर है, सत्य और प्रिय है, सत्य और कोमल है। तेरी वाणी शुद्ध है, तेरी वाणी सत्य, शुद्ध और विशुद्ध है, निश्छल निष्कपट है, दम्भ और फरेब से सदा रहित है, तेरी वाणी अहंकार और स्वार्थ से रहित है। हे देव ! यदि तेरा आश्रित ऐसी वाणी बोले तो प्रभु तेरे बल पर बोले। यदि तेरा बल नहीं है तो अनृत अप्रिय कटु कठोर असभ्य और अशुद्ध बोले।

हे देव ! तेरा आश्रय तो इसलिए एक भक्त लेता है कि अपने प्यारों के संसर्ग को छोड़कर तेरा सहवास करता हुआ तेरी वाणी को प्राप्त करे। दयालु देव ! तेरी तो आँखें नहीं कि प्राप्त करे, तेरे कान नहीं कि हम तुझे उनसे प्राप्त कर सकें। दो चीजें प्रसिद्ध हैं एक तो तेरी वाणी ही है जो प्रसिद्ध है और दूसरा तेरा बनाया हुआ संसार प्रत्यक्ष है और उसे भी तेरी वाणी ही प्रकट करती है।

हे देव ! संसार के पदार्थों का तो मैं एक नमूना हूँ। मेरे केश, मेरा सिर, मेरी आँख, मेरे कान, ये समस्त जगत् के देवता के प्रतिनिधि हैं। मेरा पिण्ड ब्रह्माण्ड का एक खाका है जो ब्रह्माण्ड को दर्शाता है और मेरी एक वाणी जो केवल मुझे प्रकट करती है। मेरे शरीर का ऐसा कोई अंग नहीं जो तेरे नाम को प्रकट कर सके जो तेरे अमृत रस का पान कर और करा सके। यह वाणी ही है जो ऐसा रस पान कर और करा सकती है। चौरासी लाख प्राणियोंमें किसी को आपने यह पूरा अधिकार नहीं दिया। एक मानव देह वाले को यह सत्य और प्रिय वस्तु दान दी है। हे प्रभु ! भाग्यवाला ही इसे पाकर तुझे खरीद सकता है। बिना दान इस वाणी से मोहित करके वश में कर सकता है। हे प्यारे ! मैं तो तेरा आश्रित हूँ,

तेरी अपार कृपा का धन्यवाद मैं क्या करूँ। जब तेरा आश्रित हूँ तो धन्यवाद क्या करूँ। जिस के पास उदर पूर्ति के लिए अपना अन्न नहीं, शरीर को ढकने के लिए वस्त्र नहीं, पिपासा शान्त करने के लिए जल अपना नहीं, आँख को दिखाने के लिए ज्योति अपनी नहीं, जीवित रखने के लिए प्राण अपना नहीं, वह क्या धन्यवाद करेगा। मैं सदा प्रार्थना करता रहा कि जिस प्रकार संतान को देखने से पता लग जाता है कि वह अमुक व्यक्ति का पुत्र है, हे प्रभु देव! मैं तरा आश्रित हूँ। मेरा आहार-व्यवहार विचार-आचार और मेरी प्रत्येक क्रिया से जब तक तेरा नाम न टपके तब तक मैं कुपुत्र के समान हूँ। इसलिए बार-बार तेरे पवित्र चरणों में इस वाणी को गौन करते हुए एकान्त वास करता हूँ कि कोई घड़ी ऐसी आ जाए जो बहते हुए दरिया के अमृत को पान कर सकूं। तेरी दया हर वक्त टपकती है। असमर्थ, अयोग्य, विकारी रहने से वंचित रहता हूँ। तू निर्विकार है मेरी वाणी को निर्विकार कर। हे नाथ! इस व्रत के अन्दर तूने अपार कृपा की जितना मैं सोया उतना मैंने खोया। अब कि मैंने पूर्णरूपेण अनुभव किया कि जितना सोया उतना खोया—जितना धोया, उतना जोया, जितना रोया उतना मैंने बोया, जितना गँवाया उतना पाया, न सब का सब गंवा सका न सब पा सका। अभी कसर रह गई; परन्तु यह व्रत मैं हार गया जो हारा वही सहारा रहा। मैं आकार से आयु से तो लोगों में वृद्ध गिना जाता था, परन्तु व्रत के अन्दर सदा युवा रहता था और अपनी भावनाओं में सदा बच्चा ही बना रहा, परन्तु इस व्रत में मैं हर प्रकार से बुड्ढा हो गया इतना मैं हार गया। हे दयालु देव! आप थके हुए का सहारा हैं। सचमुच इस व्रत में मैं थक गया। तेरे सिवा मेरा कोई आश्रय न रहा। प्रार्थना मैं प्रतिदिन करता हूँ कि मेरी सब पाप वासनाओं को समाप्त करो। तेरे गुण तेरे स्वभाव का राज्य मेरे हृदय पर हो। इस अशुद्ध हृदय पर काम, क्रोध आदि का राज्य न हो। हे नाथ! इससे बचाओ; अपने गुण, कर्म, स्वभाव का राज्य दीजिये ताकि मेरे हाथ, मेरे पाँव, मेरे सब अंग तेरी आज्ञाओं का पालन कर सकें। कोई क्षण भी ऐसा न आए जब कि ये देवताओं के शुद्ध पवित्र अंश को अपवित्र और कलंकित करें। ये देव हैं—देवताओं के प्रतिनिधि हैं।

हे प्रभु देव! मैं किस-किस का धन्यवाद करूँ। मुझ पर किसी भी प्राणी ने अपनी इच्छा से दया नहीं की, किन्तु जिसके हृदय के अन्दर आपने प्रेरणा की उसने इस प्रकार सेवा और सहायता की, जिस प्रकार जब तक माँ आपने बच्चे को स्तन न दे तब तक उसे शान्ति नहीं आती। वैसे ही उन महानुभावों ने जब तक मेरी सेवा नहीं की, विश्राम नहीं लिया। इसलिए जिन-जिन सज्जनों ने तन से, मन से, धन से मेरी सेवा की वह तेरी प्रेरणा से ही की। हे प्रभु देव! तेरी इस अपार कृपा को देख कर मुझे प्रतीत हो रहा था कि तू प्रभु है और मैं तेरा आश्रित हूँ। जिस प्रकार माता अपने बच्चे को हर प्रकार का सुख देने के लिए शुद्ध भाव रखती है उस प्रकार उन्होंने मेरी सेवा की। उनको अपने आशीर्वाद से मालामाल कर। एक मात्र मैं तेरा आश्रित प्रार्थना करता हूँ कि मुझे पूरा प्रभु आश्रित करो. यह जो काम करे प्रभु की प्रेरणा से करे। कोई अहं-मम उसके अन्दर न आने पावे। यही आपके पवित्र दरबार में प्रार्थना है।

ओ अद्रिवो! उभयाहस्त्यभर! हे आवरण को दूर करने वाले मुझे दोनों हाथों से भर दे। एक को संसार के विषय-वासनाओं के वैराग्य से और दूसरे को अपने चरणों की प्रीति से भर दे।

(३७)

ज्ञान बिना गत नहीं

हे दयालु पिता, तेरी दया बेअन्त है। तूने अपनी अपार दया से मुझे मेरी योग्यता से इतना अधिक भर दिया है और दात दे दी है कि मैं उसे समझने में भी असमर्थ और अयोग्य हूँ। उसके समझने में भी पर्याप्त काल लगेगा, उसके समझाने के लिए भी कोई कामिल (पूर्ण) गुरु चाहिये जो स्वयं इन सारी अवस्थाओं से गुजरा हो। बहुत पुरानी आपकी देनों का भी अब ठीक पता लग रहा है। हजार दिन की मिली दातों में से भी कभी-कभी किसी-किसी का स्वाध्याय करने से वेद भगवान् अथवा अन्य लेखों से (जैसे नाड़ियों का दर्शन दिसम्बर ४६ में किया था रंगदार। कल वेद पथ में माघ मास में पढ़ा और ९-१-४७ को रस (अमृत रस) चाटा साम० ३१४ और वेद पथ में कल पढ़ा।) परिचय मिल रहा है। आज मैं आपके ५-१-५१ के संकेत को 'ज्ञान यज्ञ' को समझा कि मैं इन सब उपनिषदों का स्वाध्याय इस व्रत से करूँ जो ब्रह्म विद्या सम्बन्धी हैं।

बिना ज्ञान सही मार्ग हजार दिन वाली अनुभूतियों से कच्चा रहा है।

(३८)

भक्त की तरंग

सपुर्दम बतो खुदा खेशरा, तुदानी हिसाबे कमो बेशरा।

अब सौंप दिया इस जीवन का, सब भार तुम्हारे हाथों में।
उद्धार पतन अब मेरा है, भगवान् तुम्हारे हाथों में॥

हे भगवान्, महिमा महान्! मैं आज क्या शिकायत करूँ? तेरा तो स्वभाव ही है कि तू कभी-कभी व्रत रखा दिया करता है, पर प्रभो! वह व्रत ही कैसा जिसमें भूख बनी रहे। मुझे तो यदि तू व्रत भी कराए तो मैं अपने आपको तृप्त अनुभव करूँ। नहीं, नहीं प्रभो! कहीं ऐसा भी न कर देना कि मैं अपने आपको अभिमान तृप्त मान लूँ। उल्टा लेने के देने पड़ जाएं। यदि तू मुझे नया भोजन नहीं देता तो मुझे जुगाली ही करा दिया कर। प्रातःकाल जागते ही मेरा पूर्ण विचार था कि मेरा आज का दिन अति उत्तम व्यतीत होगा। मैंने प्रातः स्वप्न में तेरे प्यारे तपीश्वरों और ब्रह्मज्ञानी महात्माओं के दर्शन किए। पूजनीय स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज और पूजनीय स्वामी श्री गंगागिरि जी महाराज को भी सुना। जब-जब मैंने कभी स्वप्न में स्वामी जी महाराज के दर्शन किए तब तब मेरा दिन ऐसा उत्तम व्यतीत होता रहा कि मेरी प्रसन्नता की सीमा न रहती थी। आज कोई विशेषता नहीं रही और सबसे बड़ी आश्चर्यजनक भूल यह देखी कि मैंने जब स्वामी जी महाराज के दर्शन किए तो केवल हाथ जोड़ नमस्ते ही कर दी। यद्यपि अपनी आयु में जब से स्वामी जी महाराराज से मैं परिचित हूँ कभी ऐसा नहीं किया। मुझे स्वामी जी के चरणों में जितनी बार आऊँ जाऊँ उनके प्रति मस्तक झुकाने में असीम हर्ष होता है तथा मेरी श्रद्धा उनमें इतनी है कि मेरा रोम-रोम साक्षी है। परन्तु मेरी वाणी से जब-जब उनकी ध्वनि नहीं निकलती मैं अपने आपको स्वादरहित

पाता हूँ। जब मेरे भाषण में उन्हीं की वाणी होती है तो बड़ा रस आता है। स्वामी जी महाराज ने यह भी फरमाया कि हम तेरह दिन रहेंगे। इससे भी मैं चकित हो गया, अन्यथा प्रसन्नता की सीमा न रहती कि अब इतने दिनों में बहुत कुछ प्रसाद मिलेगा। प्रभो ! कृपा करो एक तो दिया न, दूसरे अवज्ञा मुझसे कितनी कराई। मैं तो जाग्रतावस्था में भी तेरा आश्रित हूँ तो फिर स्वप्न में अपनी क्या शक्ति है। दीनबन्धु प्रभो ! अपने अश्रित की आप लाज मेरी न रखोगे तो और कौन रखेगा ? प्रभो ! कृपा करो दया करो। मेरे पास रखा ही क्या है। तेरी पवित्र वेद-वाणी को मैं लोगों में कैसे प्रकट कर सकता हूँ जब तेरे प्रसाद से मैं वंचित रहूँ। जो तू ताजा देता है तो मैं उसे अपने भाइयों की भेंट धर सकता हूँ। प्रभो ! अपने नाम की लाज रखो। ऐसी पवित्र वेदी के ऊपर यज्ञ, महायज्ञ, ब्रह्म परायण यज्ञ की वेदी के ऊपर जनता से शरमसार न होना पड़े। कृपा करो...... ओहो......आश्रित फिर भूल कर रहे हो—तुम ने शरमसारी मानी तो अभिमान और क्या होगा ? यही अभिमान है, आश्रित को क्या ? जैसे प्रभु चाहे कराए। आश्रित तो यन्त्र होते हैं। धन्य प्रभो धन्य—तेरी इच्छा पूर्ण हो।

(३९)

प्रभु का स्पर्श कैसा हो ?

आओ ! आज राज को समझो। सबसे पहले प्रार्थना के स्वरूप को समझो। प्रार्थना हम क्यों करते हैं ? हम भगवान् के सामने दीन होकर क्यों बोल रहे हैं ? कोई ऐसी कमी है जिसने हमको दीन और पराधीन बना रखा है। उसी दीनानाथ के द्वार की शरण ली है कि हमारी दीनता दुर्बलता को हरो। नीच कर्म दुर्बल बनाते हैं। नीच वासनाएँ दीन बनाती हैं। इनका मूल कारण अहंकार है। इसको (अहंकार को) प्रभु चरणों में अर्पण किए बिना, नम्र हुए बिना प्रभु हमारे अपवित्र हृदय को स्पर्श नहीं करता। जैसे हम अपवित्र वस्तु या अपवित्र मैले स्थान को नहीं छूते। अहंकार रहित प्रार्थना और अहंकार की निवृत्ति के लिए प्रार्थना दिल को विनम्र और आर्द्र कर देती है और वहाँ प्रभु ही सबसे पूर्व स्पर्श करते हैं। यह है अन्तःकरण की शुद्धि का पहला साधन।

(४०)

जोत जगा मेरी प्रभु जी !

हे ज्योतिस्वरूप प्रकाशस्वरूप देव ! आज तो दीपमाला है, घर घर, अन्दर और बाहर, गली कूचों में, बाजारों में, दीवारों के ऊपर रोशनी की जगमग है। आज की अँधेरी काली रात में लोगों ने क्या ही प्रकाश का समय बना दिया है। बिजली फानूस जल रहे हैं। लोग आज प्रसन्नता से गीत गा रहे हैं। मिठाइयाँ, भिन्न-भिन्न प्रकार की जलेबियाँ, पकौड़े और पकवान तरह तरह के बाँट रहे हैं। दूध, अमृत, मीठा, केसर मिला पी और पिला रहे हैं। अपनी अपनी शक्ति भर धन को सजा सँवार, गुलाब और गेंदे के फूल, केसरी दूब में रमा कर धूप दीप जगा कर लक्ष्मी का पूजन कर रहे हैं।

एक मैं हूँ जो एकान्त जंगल की कुटिया में सोलह दिनों से तेरे द्वार पर बैठा हूँ। लोग तृप्त हैं, मैं भूखा हूँ। वे पूजन कर रहे हैं और मैं तुझे बुला रहा हूँ। मेरे भी प्रेमियों ने कुटिया के चारों ओर दीपक जला कर उजाला कर दिया है, परन्तु नाथ! वे दीपक मिट्टी के हैं, तेल के पराधीन हैं। घन्टों जल कर बुझ जाएँगे। यदि तेरा पंखा चला तो एक क्षण में अपनी जीवनी समाप्त देखेंगे। कुटिया के अन्दर उनको आना नहीं कि मैं तेरी प्रतीक्षा में हूँ। मेरे शरीर रूपी कुटिया का मन रूपी दीप बिना प्रकाश के है। मैं ही जगाऊँ मेरा तो हाथ अन्दर नहीं जाता इसे तो तू ही जगा। तेरा जगाया दीपक अबुझ हो जाता है उसे कोई हवा नहीं बुझा सकती। प्रभो! तू तो सर्वज्ञ, वेदज्ञ है, वेद निर्माता है, अतिथि को भूखा रखना, द्वार पर पड़े शरणागत को तिरस्कृत करना, बड़ा पाप है। मैं तेरे द्वार का अतिथि हूँ, मेरी सुधि नहीं लेता। प्रभो! या तो मेरा अतिथि सत्कार कर या तू मेरा अतिथि बन जा। यदि तू अतिथि है तो आ कृपा करके दर्शन दे और मेरा बहुत ही परम मूल्यवान् आसन जिस पर मेरी सारी जीवनी का आधार है उसे ग्रहण कर, अपने नीचे बिछा। यह आसन मेरा अहंकार नाम का आसन है। प्रसिद्ध आसन है। मैं सदा इसी पर चढ़ा रहता हूँ। इसे स्वीकार कर ले। मैं घास की कुटिया का द्वार खोल देता हूँ। आजा, अब तुझे, बाहर कोई नहीं देखेगा। भगवन्! मेरी दीपमाला खाली चली जाए तो मैं किसका पूजन करूँ। मेरी तो लक्ष्मी भी तू है नारायण भी तू है विष्णु भी तू है। मेरी ज्योति जगा मैं उससे तेरी आरती करूँ। मुझे शपथ खिलाने की बड़ी आदत है। तुझे रब्ब की शपथ है। ओहो तेरा तो कोई रब्ब 'परमात्मा' नहीं। तू आप ही रब्ब-उल-आलमीन (सबका परमात्मा) है। फिर किसकी शपथ डालूँ? अपने अमृत पुत्रों का वास्ता मान, अपने प्यारे भक्तों का नाम मान, अपने नाम की लाज रख। शरणागत को अपने द्वार से खाली न लौटा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तू मुझे अपने द्वार से यदि खाली न लौटाये और मेरी ज्योति को जगा दे तो मैं तेरी प्रजा—तेरे बन्दों को अपने आए द्वार से खाली न लौटाऊँगा। उनकी ज्योति को तेरी ज्योति से जगाता रहूँगा। घर घर पर नित दीपमाला मनाता फिरूँगा। मैं और कुछ नहीं माँगता, केवल मात्र दर्शन दे। तुझे यह भय न रहे कि सबकी ज्योति जग गई तो सबका पालन पोषण मुझे करना पड़ेगा। अब तो सारे अपनी कमाई खाते हैं। मेरा कुछ नहीं लगता। प्रभो! मैं यह भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि हम कुछ नहीं मांगेंगे। मैं और मेरे साथी, तेरी ओर आने वाले, कुछ नहीं मांगेंगे। निःसंकल्प होंगे, खातिरजमा रख, धीरज रख। हाँ, लेन देन का कोई व्यापार आपसे नहीं करेंगे। तू हमें प्यार किया कर, हम तेरे दर्शन किया करें। फिर मेरी माँग बिल्कुल मिट जाएगी। एक बार अब मेरी ज्योति जगा दे, अपनी ज्योति से मिला दे। ऐसा तृप्त कर दे कि कण कण में तू दिखाई देता रहे। बस मेरी भूख मिट जाएगी, मेरी प्यास बुझ जाएगी। यही मेरे लिए केसरी, मीठे दूध का अमृत है। मेरी यही मिठाई, जलेबी, पकौड़ा, पकवान, अमृत धाम है। हे प्रभु आश्रित के प्रभो! दया कर, हे दयामय देव! आओ, इस भक्त की सूनी कुटिया को जगमगाओ।

यह मन्दिर विश्वकर्मा का निराला ही निराला है।
तेरी ज्योति का इसमें फकत हो सकता उजाला है॥

(४१)

क्षमा करना सीखो

हे प्रभुदेव ! मैं अल्पज्ञ मनुष्य हूँ, पग-पग पर भूल करता हूँ। अपने जीवन की ओर जब देखता हूँ, तो तेरे दरबार में रो-रो कर बारम्बार क्षमा याचना करता हूँ। मनुष्य तो कोई पूरा नहीं—भूल हो ही जाती है। मुझे ऐसी शक्ति और साहस दे कि मैं स्वयं क्षमा करने का अभीष्ट बनूँ। उस सेनापति की तरह लज्जित न होना पड़े, जिससे एक बार पूछा गया कि तुम कभी कभी क्षमा करते हो या नहीं तो उसने कहा कि मैंने कभी किसी को क्षमा नहीं किया। इस पर प्रश्नकर्ता ने कहा तब मैं आशा करता हूँ कि तुमसे कभी भूल नहीं होती होगी। इस पर सेनापति लज्जित हो गया।

(४२)

आशीर्वाद की प्रार्थना

ओं मेधां ते मित्रावरुणौ मेधामग्निर्दधातु ते।
मेधां ते अश्विनो देवावाधत्तां पुष्करस्रजो शाम ॥

हे बालक ! ईश्वर करे कि दिन और रात तुझे तेरे सुने तथा पढ़े हुए ज्ञान को धारण करने की शक्ति प्रदान करने वाले हों। पूजनीय परमेश्वर तुझे धारणावती बुद्धि प्रदान करें और आकाश माला धारी सूर्य तथा चन्द्रमा का प्रकाश भी तुझे धारणावती बुद्धि देवे, अर्थात् तू काल और सूर्य चन्द्र आदि की समस्त गुप्त शक्तियों का ज्ञाता बने।

(४३)

जन्म दिवस पर कृतज्ञता व प्रार्थना

हे दयानिधे प्रभो ! आज दो फाल्गुन सम्वत् २०१७ है—मेरे ७४ साल आयु के कल तक पूरे हो गये—आज ७५वाँ (पचहत्तरवाँ) साल आरम्भ हो गया—नाथ ! तू ने अपनी अपार दया और कृपा से मेरे जीवन की ७४ साल तक कैसे रक्षा की—मेरे जीवन की मुश्किलात को नामुमकिन कर दिया—प्रभु देव ! आप ने महान् दया की ; कदम-कदम पर जिन्दगी का हाल नामुमकिन सा नजर आता—सबको, मगर वाह रे प्रभु देव ! तूने कैसे क्षण में मुमकिन कर दिया। ऐसा निभाया कि मैं सिवाय इन शब्दों के कि तेरी रहमत का कोई अन्त नहीं हैं, तेरी रहमत का कोई अन्त नहीं हैं, तेरी रहमत का कोई अन्त नहीं है, तेरी लीला बेअन्त है, तेरी लीला बेअन्त है—और कुछ नहीं कह सकता। बुद्धि असमर्थ है, वाणी असमर्थ है, हे नाथ ! अब भी तुझे ही लाज—यह साल अपनी रहमत बेअन्त के साये तले निभाना।

(४४)

राष्ट्र कल्याण की प्रार्थना

ओं आ ब्रह्मन् ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णूः रथेष्ठाः

सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम् । निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ।।

यजुः २२।२२

हे समस्त क्लेशों के नष्ट करने वाले, बिगड़ी को सुधारने वाले, पाप, ताप अपहारक तथा संकटों से मुक्त करने वाले प्रभो । इस समय हमारा देश तथा मानव जगत् कुकर्मों के कारण पददलित हो चुका है ! तुम्हारे बिना अब हमारा कोई उत्थान और कल्याण करने वाला नहीं । आओ, कृपानिधे आओ ! हमारी इस तुच्छ प्रार्थना को स्वीकार करो । हमारे देश में ब्राह्मण वेद विद्या में निपुण तथा ब्रह्मवर्चसी उत्पन्न हों, तथा राजा प्रजा के लिए महा शूरवीर धनुर्विद्या विशारद राजपूत क्षत्रिय बलवान् और महारथी पैदा हों । दूध अमृत के भण्डार भर देने वाली गौएँ, हृष्ट पुष्ट बैल, तेज गति वाले घोड़े सत्यव्यवहार करने वाली स्त्रियाँ, रथ पर स्थित होने वाले तथा शत्रु पर विजय पाने वाले सभा के योग्य सुसभ्य युवा पुरुष उत्पन्न हों । इस राजा के राज्य में विद्वानों का सत्कार करने वाले सुखों के देने वाले विशेष ज्ञानवान तथा शत्रुओं को नष्ट-भ्रष्ट करने वाले प्राणी उत्पन्न हों । जब-जब हम चाहें वर्षा और मीठे फलों से युक्त औषधियां हमें प्राप्त हों तथा हमारी संपूर्ण कामनाएँ परिपूर्ण हों ।

(४५)

कबीर का भजन : रोने में आनन्द आता है

भक्त कबीर के शब्दों में :—

मन मेरो लागो यार फकीरी में—मन मेरो लागो यार फकीरी में ।
जो सुख पावा, फकीरी में—वह सुख नाहि अमीरी में···मन मेरो···
भला बुरा सबका सुन लीजै—कर गुजरान गरीबी में···मन मेरो···
प्रेम नगर में रहन हमारो—भली बन आयी सबूरी में···मन मेरो···
हाथ में कुण्डी बगल में सोटा—चारों दिशा जागीरी में···मन मेरो···
आखिर यह तन खाक मिलेगा—काहे फिरत मगरूरी में···मन मेरो···
कहत कबीर सुनो भाई साधो—साहब मिले सबूरी में···मन मेरो···

१९-८-७१

व्रत एवं भावः सं० २०१८ तपोवन देहरादून । वाह प्रभो ! धन्य हो, लोगों को तो हँसने में आनन्द आता है, मुझे तो तेरे सामने रोने में भी आनन्द आता है । यह आनन्द तेरा अपना निज स्वरूप है । तू मुझे रोने में इसके दर्शन कराता है ।

वेद विषय में आर्यसमाज की मान्यता

वेद के सम्बन्ध में आर्य समाज के नेताओं ने भाषण तो बहुत दिए पर काम शून्य के बराबर रहा। क्या एक स्वर्गीय विद्वान् की मनोभावना का आदर करते हुए हम इस ओर ध्यान देंगे?

—विद्यामहोदधि स्व० पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु

वेद उस ज्ञान का नाम है, जो सृष्टि के आदि में परमपिता द्वारा जीवों की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति, ऐहिक और पारलौकिक सुख कल्याण की प्राप्ति के लिये, प्रदान किया गया और किया जाता है, जिसकी स्वरवर्णानुपूर्वी नित्य है। उसके आधार पर ही आगे ऋषि-मुनियों के ग्रन्थों की रचना हुई। वह वेद सर्वज्ञानमय [सब सत्य विद्याओं का भण्डार] है, मानव सम्बन्धी समस्त आवश्यक ज्ञान बीजरूप से इसमें हैं, यह धारणा समस्त ऋषि-मुनियों की है। अतएव ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज ने भी इसी धारणा को आधारभूत माना है। आर्य-सनतन-वैदिक (आजकल हिन्दू कहे जाने वाले) धर्म का यत् किञ्चित् भी क्रिया-कलाप वेद के बिना नहीं चल सकता। जन्म से मरणपर्यन्त वेद का ही आश्रय लेना अनिवार्य है। भारत के राष्ट्रपति और प्रधान-मन्त्री (चाहे वह अपने आपको सैक्यूलर कहें या नास्तिक) के यहाँ विवाह आदि कोई शुभ कार्य वेद की ध्वनि के बिना नहीं हो सकता। अतएव वेद आर्य जाति का प्राण है, इसमें यत्किञ्चित् भी अत्युक्ति नहीं। भारतीय संस्कृति, सभ्यता और साहित्य का मूलाधार वेद है। प्राण और मूलाधार एकार्थवाचक हैं। इसीलिये मनु महाराज ने कहा—

स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः।

अर्थात् वेद में सब ज्ञान, विद्यायें वर्णित हैं क्योंकि वेद सर्वज्ञानमय है।

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥

महाभारत शा० २३।१४२

अर्थात् स्वयंभू परमेश्वर ने वेदमयी दिव्य, नित्य, जिसका आदि-अन्त नहीं होता, ऐसी वाणी प्रदान की, जिसके आगे संसार के समस्त व्यवहार चले। ऋग्वेद के दशम मण्डल के ७१वें सूक्त में भी इसी बात को कहा गया है—

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः।

अर्थात् वेदवाणी प्रथम अर्थात् सृष्टि के आदि में दी जाती है, वही सब भाषाओं की मूल है। उसी से सब पदार्थों के नामादि का व्यवहार चलता है। वह सर्वश्रेष्ठ सर्वदेशी होती है और उत्कृष्ट आत्माओं द्वारा प्रकाशित होती है। मनु ने भी इसी बात को आगे के श्लोक में कहा है—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।

वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥मनु०

वेद का महत्त्व सदा से ऐसा ही माना जाता रहा, यही हमारा कहना है।

सब ऋषि-मुनि वेद को **"सर्वज्ञानमयो हि सः"** (मनु २।७) **"प्रमाणं परमं श्रुतिः"** (मनु) **"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्"** (मनु २।६) सर्वज्ञान का मूल, परम प्रमाण और **"देवपितृमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्"** सबका पथप्रदर्शक मानते हैं।

इन्हीं कारणों से ऋषि दयानन्द ने वेद को आधार माना और **"वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है"** यह नियम बनाकर आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज भी उपर्युक्त कारणों से ही इस सिद्धान्त को मान रहा है।

प्राचीन काल से वेद आर्य संस्कृति के प्रकाशस्तम्भ रहे हैं। आर्य जाति के संगठन और उसकी जीवनचर्या के व्यवस्थापन वा नियमन, उसकी आध्यात्मिक तथा अन्य उत्कृष्ट भावनाओं की प्रेरणा में वेद का प्रमुख स्थान रहा है, यह हमारा इतिहास बतलाता है। सभी ऋषि-मुनियों ने वेद को परम प्रमाण, अपौरुषेय और ज्ञान का भण्डार माना है। उन प्राचीन ऋषि-मुनियों की कृतियों में जो लोकोत्तर महत्ता दिखाई देती है, उसमें भी हमें वेद की उत्कृष्ट भावनाओं का प्रभाव पदे-पदे दृष्टिगोचर होता है, जो हमारी आर्य संस्कृति का अंग बनकर हमारे देश से बाहर कहीं-कहीं धुंधले प्रकाश के रूप में दिखाई देती है, जिससे हमें अपनी आर्य संस्कृति का महत्त्व अधिक स्पष्ट प्रतीत होने लगता है। इस सबके मूल को खोजने से हमें यही विदित होता है कि वेद हमारी आर्य जाति, आर्य संस्कृति तथा सभ्यता के प्राण, अक्षय्य निधि, पथप्रदर्शक सदा रहे हैं। और वेद के कारण ही ये सब संसार में अजर अमर हैं।

"निष्कारणो धर्मः षडंगो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च" (महाभाष्य)

बिना यह विचार किये कि इससे क्या लाभ होगा, परम कर्तव्य समझते हुए इस वेद को छहों अंगों सहित पढ़ने का आदेश इसीलिए हमारे ऋषि लोग करते चले आ रहे हैं। इसी का यह फल है कि यह वेद इस समय तक हमारे पूर्वजों के पुण्य प्रताप से कुल परम्पराओं द्वारा सुरक्षित रहता आया। अन्यथा भूमंडल भर में खोजने पर भी इसका चिह्न तकन मिलता, जैसा कि अनेक जातियाँ अपने-अपने साहित्य के साथ इस भूमंडल से सदा के लिए मिट गईं, वैसे यह वेद भी कभी का लुप्त हो जाता।

वेद सम्बन्धी मिथ्या धारणाएं

वेद का अभ्यास शताब्दियों से छूट जाने के कारण वेद के सम्बन्ध में मिथ्या धारणाएँ चल पड़ीं। इनका प्रारम्भ तभी से हुआ जब से वेद को केवल यज्ञ में ही सीमित कर दिया गया। वेदों के आध्यात्मिक और आधिदैविक अर्थों का लोप हो गया, जिनकी परम्परा आज से १४००-१५०० वर्ष पूर्व तक विद्यमान रही। इतना ही नहीं, यास्कमुनि को भी यही अभीष्ट था, जिसका सप्रमाण वर्णन हम अपने अन्य लेखों में विस्तार से कर चुके हैं। इस उत्कृष्ट परम्परा को या तो सायणाचार्य ने नष्ट कर दिया, या उसकी अपनी समझ में नहीं आयी, और इस कारण उसने इसे छोड़ दिया। यह बात हम इसलिये कहते हैं कि सायणाचार्य ने यहां तक लिख दिया कि संहिता और ब्राह्मण केवल यज्ञ का ही प्रतिपादन करते हैं। तद्यथा—

"**तस्मिश्च वेदे द्वौ काण्डौ। कर्मकाण्डो ब्रह्मकाण्डश्च। बृहदारण्यकाख्यो ग्रन्थो ब्रह्मकाण्डस्तद्व्यतिरिक्तं शतपथब्राह्मणं संहिता चेत्यनयोर्ग्रन्थयोः कर्मकाण्डत्वम्। तत्रोभयत्राधानाग्निहोत्रदर्शपूर्णमासादिकर्मण एव प्रतिपाद्यत्वात्।**" (काण्व संहिता सायणभाष्य भूमिका)

अर्थात् वेद में दो काण्ड हैं, कर्मकाण्ड और ब्रह्मकाण्ड। बृहदारण्यक (अर्थात् उपनिषद् सामान्य—ले०) ग्रन्थ तो ब्रह्मकाण्ड है और उससे शेष शतपथ ब्राह्मण और संहिता इन दोनों ग्रन्थों का विषय कर्मकाण्ड है। इन दोनों [शतपथ ब्राह्मण और संहिता] में अग्निहोत्र दर्शपूर्णमासादि कर्मों का ही प्रतिपादन है। यहाँ "एव" (ही) पद विशेष ध्यान देने योग्य है।

सायणाचार्य की उत्पन्न की हुई यह उपर्युक्त भ्रान्ति वेदसम्बन्धी समस्त मिथ्या भ्रान्तियों का मूल आधार है। इसने वेदसम्बन्धी सब गौरव और मानव जीवन में वेद की उपादेयता का सर्वथा नाश कर दिया। सायणाचार्य वि० संवत् १३७२ से १४४४ में हुए। उनके पश्चात् इस ५००-६०० वर्ष के काल में वेद का स्वरूप और महत्त्व लगभग सर्वथा लुप्त हो गया। वेद के अर्थ समझने की प्रवृत्ति लुप्त हो गई और वेद की पुस्तक वर्ष में एक वार नवरात्रों के दिनों में धूप में रक्खी जाती रही, या अधिक हुआ तो वेद की सवारी (एक रथ में सजा कर सारे नगर में घुमा देना) निकाली जाती रही, जो हम बाल्यकाल में देखा करते थे। वेद का पठन-पाठन केवल कंठस्थ करने तक ही रहा। अर्थसहित पठन-पाठन में वेद प्रायः लुप्त हो गया।

वेद सम्बन्धी उक्त भूल के दुष्परिणाम

यह भूल सायणाचार्य तक ही रह जाती, अथवा भारत तक ही सीमित रही होती, तब भी इतनी हानि नहीं थी। इसके परिणाम बड़े भयंकर हुए। यह ठीक है कि महात्मा बुद्ध के काल में भी यज्ञयागादि की प्रधानता रही और वेद का अर्थ केवल यज्ञपरक ही होता है, इस मान्यता से ही यह भ्रान्ति उत्पन्न हुई, और बुद्ध जैसे महापुरुष, पवित्र हृदय महात्मा, यह कहने पर बाधित हुए कि मैं ऐसे वेद को मानने को तैयार नहीं, जिसमें पशुहिंसा का विधान हो। यह बात निश्चय ही सायणाचार्य से पूर्व की है। अर्थात् सायणाचार्य से पूर्व यज्ञों में मांसादि का विधान चल चुका था। सायणाचार्य इन सबसे बच न सके, उन्होंने इतनी ही भूल की (जो बड़ी भारी भूल थी) कि वेद-ब्राह्मण और संहिता में केवल यज्ञ का ही प्रतिपादन

है, ऐसा लिख कर वेदार्थसम्बन्धी चली आने वाली आध्यात्मिक, आधिदैविक प्रक्रियाओं की परम्परा का नाश कर दिया।

विदेशीय विद्वानों को वेदविषय में सायणभाष्य ही एकमात्र आश्रय मिला। वह उनके अनुकूल निकला, क्योंकि वे तो चाहते ही थे कि भारतीयों को अपनी प्राचीन संस्कृति, सभ्यता और साहित्य के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न कर उन्हें मार्गभ्रष्ट किया जाये और हमारा राज्य भारत में चिरस्थायी रह सके—और इसी कारण बहुत दिन रहा भी।

इसमें संदेह नहीं कि हम विदेशी विद्वानों का आभार मानते हैं, जो उन्होंने अभारतीय होते हुए भी संस्कृतसाहित्य विशेषकर वैदिकसाहित्य में अनुपम, प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय उद्योग किया। निःस्संदेह उन्होंने वैदिकसाहित्य की खोज (Research) का उपक्रम करके हम भारतीयों के सामने अपने साहित्य की रक्षा का उत्तम मार्ग दर्शाया। जिस किसी विदेशी विद्वान् (स्कालर) ने संस्कृत साहित्य के जिस किसी ग्रन्थ का सम्पादन किया, सर्वसाधारण की दृष्टि से वह उनके अत्यन्त परिश्रम, निरन्तर धैर्य और गम्भीर विवेचना का परिचय देता है। यह दूसरी बात है कि उनका ज्ञान शास्त्र विषय में गहरा नहीं था और उनकी भावना विपरीत थी।

सायणाचार्य की वेदार्थ विषय की इस मिथ्या धारणा का क्या दुष्परिणाम हुआ, यह हमको बताना है। सोचने की बात है कि इन विदेशी विद्वानों को यदि सायणाचार्य की अपेक्षा कोई और उत्तम भाष्य मिला होता, तो इनके अंग्रेजी-फ्रेंच-जर्मन आदि विदेशी भाषाओं में किये अनुवादों का स्वरूप निश्चय ही भिन्न होता, जो अब सायण से आगे कोई न बढ़ सका।

ऋषि दयानन्द और वेद

वेद का अर्थ केवल यज्ञपरक ही होता है और यज्ञ में पशुबलि का विधान है, यह मिथ्यावाद घोर रूप में प्रचलित था। उपर्युक्त सब अनर्थ वेद और शास्त्र के नाम पर हो रहे थे। अपने उन विषयों के लिए ब्राह्मण-श्रौत-गृह्य आदि ग्रन्थों के प्रमाण उपस्थित किये जाते थे। हमने काशी में देखा कि मांस, मद्य आदि से अत्यन्त घृणा करने वाले व्यक्ति भी यज्ञ में अज (बकरे) का मांस खाने को बाधित हुए, क्योंकि वह मानते थे कि यज्ञ में मांस डालने का शास्त्रीय विधान है। क्योंकि उनके हृदय में यह बैठ चुका है कि इसके लिये शास्त्र की आज्ञा है, इसका पालन न करने में प्रत्यवाय (पाप) लगेगा। इन्होंने घृणा के कारण आगे-पीछे कभी कोई मांस नहीं खाया।

ऐसी दुरवस्था में परमपिता परमात्मा की असीम कृपा से महापुरुष दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वनियन्ता अन्तर्यामी जगदीश्वर पर पूर्ण आस्थावान् होने के कारण ही दयानन्द को दैवी अन्तःप्रेरणा हुई कि वेदार्थ लुप्त हो चुका है तुम उसका उद्धार करो और वेद के सच्चे अर्थ संसार के सामने रखो, जिससे शताब्दियों से इस विषय में फैली हुई भ्रान्ति दूर हो और संसार का कल्याण हो। दयानन्द ने पर्वत के शिखर पर खड़े होकर देखा कि संसार मेरे विरुद्ध है, और मेरे विपक्ष में शास्त्रों को प्रमाणरूप किया जाता है। सर्व साधारण की दृष्टि में शास्त्र दयानन्द का साथ नहीं देते। उस समय का विद्वन्मण्डल चकित रह गया, जब दयानन्द ने घोषणा की—"वेद प्रभु की पवित्र वाणी है, जो सृष्टि

के प्रारम्भ में मानव-कल्याण के लिये संसार के अन्य भोग्य पदार्थों की भाँति यथावत् व्यवस्था के ज्ञानार्थ तथा उसके अनुसार आचरण करने के लिये प्रभु की ओर से ऋषियों द्वारा प्रदान की गई है और यह वाणी नित्य है; सदा से प्रदान की जाती रही और की जाती रहेगी। यह मानव या मानवों के समुदाय की कृति नहीं है, अपितु सम्पूर्ण विश्व के रचयिता परमपिता परमात्मा की ही रचना है। कल्प-कल्पान्तरों में इसमें किसी प्रकार की न्यूनाधिकता नहीं होती। इसमें किन्हीं व्यक्तियों का इतिहास नहीं, न पशुबलि आदि का ही विधान है। यह मानव मात्र के लिये है, शूद्र वा स्त्री आदि किसी मानव देहधारी को इससे वंचित नहीं रखा गया। वेद के मन्त्रों के केवल यज्ञपरक ही अर्थ नहीं होते, अपितु मानव-जीवन की प्रत्येक समस्या के हल करने का उपाय बीज रूप से वेद में विद्यमान है। इत्यादि इत्यादि।"

यह धारणा वेद के सम्बन्ध में वैदिक धर्मियों की है, जिसका विशद निरूपण हमें ऋषि दयानन्द कृत समस्त ग्रन्थों में, विशेषकर ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में मिलता है। ऋषि का छोटे से छोटा ग्रन्थ हो, या बड़े से बड़ा, उसके प्रत्येक पृष्ठ में, नहीं नहीं प्रत्येक पंक्ति में, इश्वर और वेद का निरूपण किसी न किसी प्रकार से अवश्य मिलेगा। इसलिये सामवेद का भाष्य करने वाले श्री रामानन्द सम्प्रदाय के आचार्य स्वामी भगवदाचार्य जी ने स्वामी दयानन्द को आस्तिक शिरोमणि लिखा।

उपर्युक्त धारणा को हम वैदिकधर्मियों ने ठीक ठीक होने से अंगीकार किया और उसके पुनरुद्धार का भार अपने ऊपर लिया।

वेद के इस स्वरूप को निर्धारित करने में वीतराग तपस्वी दयानन्द को कहाँ तक कष्ट उठाना पड़ा, वह भी उस अवस्था में जब कि वेदों का पठन-पाठन लुप्तप्राय ही हो रहा था, इसके कहने की आवश्यकता नहीं। शास्त्रसम्बन्धी विविध रूढ़ियों, प्रचलित रीतियों और शास्त्रकारों के कहे जाने वाले परस्पर विरोध के भँवरों, विविध वादों तथा मतमतान्तरों के तूफान में, दयानन्द पर्वत के समान अचल रहे, डिगे नहीं। अपने आपको केवल संभाले रहे इतना ही नहीं, अपितु उन्होंने एकदम सबके विरुद्ध घोषणा कर दी कि—"वेद प्रभु की वाणी है। नित्य स्वतः प्रमाण है। इसमें किसी का इतिहास नहीं। अन्य सब ऋषियों के बनाये ग्रन्थ परतःप्रमाण हैं। अर्थात् वेदानुकूलतया ही प्रमाण है" स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यह घोषणा कल्पनामात्र से ही नहीं की, अपितु उन्हीं ऋषि-मुनि कृत ग्रन्थों के आधार पर की, जिनके प्रमाण से वे लोग अपनी बातें सिद्ध करते थे। दूसरे शब्दों में महान् दयानन्द ने ऋषि-मुनियों के उन ग्रन्थों के शुद्ध अर्थ उन्हें बताये।

भारतीयों की वेद के प्रति अनास्था क्यों ?

वेद का अर्थ केवल यज्ञपरक होने लगा और यज्ञ में पशु-हिंसा का विधान चल पड़ा। सायण, उव्वट, महीधर आदि ने इन पर मुहर लगा दी। महीधर ने जहाँ वेद का अत्यन्त बीभत्स अर्थ किया, वहाँ सायण ने 'यज्ञ एवं' 'यज्ञ ही' वेदों का अर्थ बताया, जिससे वेदों के प्रति बहुत काल से अनास्था चल पड़ी। यह हम ऊपर लिख चुके हैं। मैं तो कहता हूँ महीधरभाष्य को भी छोड़ दें, जो अत्यन्त बीभत्स है, और यदि वेद का सायणभाष्य ही हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू वा अन्य किसी भाषा में

अनुवाद करके हिन्दी शिक्षणालयों क पाठ्यक्रम में रख दिया जावे, तो निश्चय ही समझना चाहिये, कुछ श्रद्धालुओं को छोड़कर, सबकी एक ही ध्वनि उठेगी कि यह वेद जंगलियों की बड़बड़ाहट वा अन्टसन्ट कृतियाँ हैं, जिनसे मानव-समाज को कुछ लाभ नहीं हो सकता। पंजाब यूनिवर्सिटी की शास्त्री परीक्षा में जितना अंश सायणभाष्य का है, उससे सायण की छाप के कारण ये शास्त्री लोग प्रायः वेद से विमुख हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें वेद के वास्तविक स्वरूप का तो दर्शन भी नहीं हो पाता।

आर्यसमाज ने वेद के विषय में बहुत कुछ ज्ञान देने का प्रयत्न तो किया, पुनरपि हमें वेद के प्रति अनास्था क्यों दिखाई देती है, एक विचारशील भारतीय स्वभावतः यह सोचने लगता है।

इस अनास्था के अन्य कारण

वेद के विषय में हमारी आर्य संस्कृति में प्राचीन काल से चली आ रही इतनी उत्कृष्ट भावना के होते हुए भी क्या कारण है कि भारतीयों में वेद के प्रति सम्प्रति इतनी अनास्था हो गई; वे इससे एकदम दूर हो गये। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। हम विचारशील सज्जनों के समक्ष इस विषय में अपने विचार उपस्थित करते हैं। वेद के प्रति अनास्था रखने वालों की कई कोटियाँ हैं। हम उन पर क्रमशः विचार करेंगे—

[१] प्रथम कोटि उन लोगों की है, जिन्हें दुर्भाग्यवश अपने घर पर भारतीय संस्कृति, साहित्य, सभ्यता का कुछ भी संस्कार व ज्ञान बाल्यकाल से नहीं मिला। वे या तो विदेश में पढ़े या उन्होंने भारत में विदेशी राज्य द्वारा चलाई गई विदेशी पाठ्य-पद्धति से ही अध्ययन किया। संस्कृत साहित्य से शून्य न रहना तो दूर की बात है, वेदशास्त्रों के हिन्दी में प्राप्त होने वाले अनुवाद वा भाषार्थ को भी उन्होंने कभी नही पढ़ा। ऐसे लोग वेद या शास्त्र के विषय में कोई बात [जो उन्होंने अंग्रेजी की पुस्तकों में पढ़ी होती है] कहने लगते हैं। उनसे वे स्वयं तो सर्वथा अनभिज्ञ होते ही हैं, जिनकी पुस्तकों के आधार पर वह बोल रहे होते हैं, वे भी प्रायः प्राचीन वैदिक साहित्य से कोरे होते हैं, या उन्होंने भी वे बातें अपने विदेशी गुरुओं वा विदेशी पद्धति से पढ़े हुए विद्वानों से ही ली होती हैं। उसमें उनका ज्ञान बहुत थोड़ा होता है। ऐसे व्यक्तियों द्वारा यह कहना कि वेदशास्त्र में क्या रखा है स्वाभाविक है, भला इनकी ऐसी बात का क्या मूल्य हो सकता है? इसे, अज्ञानमूलक होने से किसी पागल का प्रलापमात्र ही तो कहा जायगा।

[२] दूसरी कोटि उन विद्वान् समझे जाने वालों की की है, जो एम० ए० तथा शास्त्री आदि पढ़े होते हैं या हमारी आर्य-समाज की संस्थाओं की परीक्षायें पास किये होते हैं। ये महानुभाव जब वेदशास्त्रों के विषय में अपनी अनास्था प्रकट करते हैं, तो जनता में महान् क्षोभ उत्पन्न हो जाता है कि ये संस्कृत के विद्वान् हैं, इतने वर्ष आर्यसमाज की वा अन्य संस्थाओं में पढ़े हैं, इनका कथन अतथ्य कैसे हो सकता है? इस विषय में मेरी इस प्रकार के कई महानुभावों से बातचीत हुई, तो पता लगा कि इनकी अपनी कोई स्थिति—धारणा वा ठिकाना [खूंट] नहीं होता। यहीं तक नहीं, ये महानुभाव स्पष्ट कहने लगते हैं कि हमें तो ईश्वर के अस्तित्व

में भी विश्वास नहीं। कर्मवाद के सिद्धान्त में भी उन्हें कोई आस्था नहीं होती। वह समझने लगते हैं कि ज्ञान तो बढ़ता ही रहता है। संसार ऋषिमुनियों से बहुत आगे निकल चुका है। इस प्रकार उनकी बुद्धि भ्रान्त हो चुकी होती है और वे ईश्वर, वेद, धर्म, कर्मवाद, संस्कृति, सभ्यता के विषय में बहकी-बहकी बातें करते हैं। ऐसे व्यक्तियों की—अपनी किन्हीं निर्बलताओं के कारण-ईश्वर की सत्ता से भी आस्था उठ चुकी होती है, जिस का कारण बहुत गहराई में जाने से ही पता लग सकता है। एक बार एक सज्जन ने बताया "मैं आज से कुछ वर्ष पहले आर्यसमाज का अत्यन्त श्रद्धालु और कार्यकर्ता युवक था। विदेश में कुछ वर्ष रहा। हजारों रुपया मुझे वहाँ पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति मिली। मैं वेद-शास्त्र का ही विश्वासी था। विदेश में रहने से मेरा विचार एक दम बदल गया और मुझे तो अब निश्चय हो गया है कि संसार का जितना ज्ञान है वह अमेरिका, इंग्लैंड आदि में ही है। मैं अपना भाग्य समझता हूँ कि वेद-शास्त्र के चक्र से निकल आया। मैं तो सत्य का उपासक हूँ; जो भी सत्य होगा, मैं उसे मानूंगा। हमारे वेद-शास्त्रों में कुछ नहीं। भारतीय संस्कृति, सभ्यता साहित्य में कुछ नहीं रखा, यों ही अण्ट-सण्ट लिखा है। संसार उन्नत होकर बहुत आगे बढ़ चुका है। भारतवासी उसी प्राचीन वेद-शास्त्र को लिए जा रहे हैं, जिस में कुछ भी नहीं। भौतिक उन्नति सुख और शान्ति का परम साधन है, इत्यादि।"

आर्यसमाज के सम्पर्क में कुछ समय रहे इस व्यक्ति के विचारों को सुन कर प्रथम तो मैं कुछ देर स्तब्ध-सा रहा, सोचने लगा कि इसको हो क्या गया है। अन्त में मैं पूछ बैठा—कहिए! आप ईश्वर की सत्ता को तो मानते हैं, वा अनुभव करते हैं, या नहीं? उसने यह कहा—मेरा ईश्वर की सत्ता और कर्मवाद में विश्वास नहीं। जब उसने यह कहा, तब समझ में आ गया कि इन ऊलजलूल विचारों का कारण क्या है। जो व्यक्ति ईश्वर की सत्ता को ही अनुभव नहीं कर पाता, उसमें जिस की आस्था नहीं, भला वह उसके [ईश्वर के] बनाये वेद में कैसे आस्था कर सकता है? अन्य शास्त्र और भारतीय संस्कृति के प्रति तो उसकी भावना हो ही कैसे सकती है। भौतिकोन्नति को देखकर बुद्धि भ्रान्त हो जाती है तो आध्यात्मिकता का कोई मूल्य उनको जँचता नहीं। ऐसे लोगों की बुद्धियाँ भ्रान्त होकर न जाने कितनी आत्माओं को मार्गच्युत कर देती हैं। विशेष कर उस अवस्था में, जब कि वे शिक्षक होते हैं।

अंग्रेज़ी और संस्कृत के पढ़े ही इस कोटि में आते हैं, सो बात नहीं। केवल संस्कृत के पढ़े भी जब ईश्वर में अनास्था करने लगते हैं, तो उनकी भी यही दशा होती है, जो ऊपर वर्णित की गई है। इनके द्वारा जनता में वेद-शास्त्रों के प्रति और भी अनास्था उत्पन्न होती है। ऐसे व्यक्तियों में या तो वे होते हैं, जिन की ज्ञानधारा वा संस्कार किहीं कारणों से विपरीत दशा में बहने लगते हैं—उस विपरीत ज्ञान से वे तब तक विरत नहीं होते, जब तक उन्हें जीवन में कोई भारी धक्का नहीं लगता—या वे होते हैं, जिन्हें अपनी बुद्धि पर बहुत अधिक मात्रा में विश्वास होने लगता है और वे समझने लगते हैं कि यह ईश्वर का न्याय क्या हुआ जो मूर्ख [विना पढ़े और कम पढ़े] तो संसार में सुख पा रहे हैं और हम इतना परिश्रम करते हैं, और दुःखी रहते हैं। वे भूल जाते है कि कर्मवाद के सिद्धान्त से सब को अपने कर्मों का यथावत् फल मिलता है। यह अवस्था मानव के ज्ञान से बाहर की वस्तु होती है। बहुत-सा दुःख तो मनुष्य अपने अज्ञान से, अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाकर भी उत्पन्न कर लेता है। ऐसे व्यक्ति दुःखी होकर ईश्वर वा

वेद-शास्त्र के प्रति भी अनास्था के भाव प्रकट करने लग जाते हैं, जिसका मूल कारण उनकी अपनी निर्बलता होती है।

[३] तीसरी कोटि उनकी है, जिनकी ईश्वर, कर्मवाद आदि में विश्वास वा आस्था तो है, पर कभी-कभी बुद्धि डगमगाने लगती है। इस अवस्था में कभी-कभी तो बहुत ऊँची भावनाएँ उनके मन में उत्पन्न होती हैं और कभी-कभी अस्त-व्यस्त विचार भी मन के सामने आने लगते हैं। इस कोटि के महानुभाव अपने को पूर्णप्रज्ञ समझने लग जाते हैं, यही भूल है। वे समझते हैं कि हम ही दूसरी को सिखा सकते है, कोई दूसरा हमें नहीं सिखा सकता। अपनी भूल के लिए मार्जन भी रखना इन्हें इष्ट नहीं होता।

ऐसी अवस्था में इनके द्वारा की गई रिसर्च वा वेदविषयक धारणाएँ इनके लिए ही हर्षदायक व लाभदायक भले ही हों, संसार के लिए नहीं। ऐसे व्यक्ति जनता का सहयोग प्राप्त करने के लक्ष्य से या तो अपनी रिसर्च का विषय ही ऐसा बना लेते हैं, जिसमें सूचियाँ बनाना मात्र हो, या फिर गोलमाल लिखते रहते हैं, जिसमें दोनों प्रकार के विचार जनता क सामने आते रहते हैं। साधारण जनता यह समझ भी नहीं पाती कि इनका अपना सिद्धान्त क्या है। ऐसे महानुभाव वेद-शास्त्र के विषय में जब अनास्था की बात करते हैं, तो जनता में क्षोभ होने लगता है। हमारी संस्थाओं में से निकल कर बहुत से नवयुवक भी इसी सरणि का अवलम्बन करने लगते हैं। उसमें हमारी भी कमी होती है, जो हम उन्हें अध्ययनकाल में पूरी सामग्री नहीं दे पाते। चाहे उसका कारण कुछ भी हो। हम इसमें किसी को दोषी व बुरा नहीं कहते; हमने तो वस्तुस्थिति का निर्देश किया है, जैसा देखने में आता है। हमें कहना यह है कि ऐसे महानुभावों की अनास्था का कारण भी ईश्वर, कर्मवाद आदि मूलभूत सिद्धान्तों में सन्देह-संशय वा पूर्णास्था का अभाव ही होता है। हाँ! इस कोटि में ऐसे महानुभाव भी हैं जिन्हें ईश्वर पर विश्वास है, पर वेद को ईश्वरीय ज्ञान न मानकर ऋषियों की कृति मानते हैं। ऐसा मानते हुए भी वेदों को बहुत अच्छी दृष्टि वा परम श्रद्धा से देखते हैं। उनमें उन्हें अनेक ऊँची भावनाएँ मिलती हैं। मानव-समाज के लिए वे वेद को परम आवश्यक व परम साधन मानते हैं। ऐसे शुद्ध भावनापूर्ण महानुभावों का हमें सादर स्वागत करना चाहिए और उन की उत्कृष्ट खोज व दैवी ऊहा से लाभ उठाना चाहिये। निश्चय ही ऐसे महानुभावों की ईश्वरविषयक वह धारणा नहीं, जो ऋषि दयानन्द की आर्यसमाज के दूसरे नियम में वर्णित है। ऐसे महानुभाव वेदशास्त्रों के प्रति कभी अनास्था की बात नहीं कहते, पर मूलाधार में सन्देह होने से संशयात्मक तो बने रहते हैं।

[४] अब हम चौथी कोटि पर विचार करते हैं। यह कोटि भारत में उनकी है जो ६० प्रतिशत अनपढ़ और हिन्दी भाषा तक से भी शून्य है। ऐसे लोगों को वेद-शास्त्र में अनास्था हो, सो बात नहीं। हाँ, अज्ञान अवश्य है, जिसके कारण उनकी आस्था में कमी है। इनको जिस ने जब जैसा बता दिया, बस उसी को पकड़ लिया। बताने वालों ने ठीक बता दिया तो ठीक समझ लिया, विपरीत बता दिया तो विपरीत मानने लगे। इतना तो है, ऐसे लोगों को वेदशास्त्रों के तथ्यों से अवगत करा दिया जाये, उन्हें इस विषय में निरन्तर शिक्षा दी जाये, तो सरल हृदय होने के कारण, ये उन तथ्यों को शीघ्र समझते हैं, ऐसा अनुभव से देखा गया है। श्वेत

वस्त्र पर रंग अच्छा आता है, मलिन पर नहीं। ये लोग ईश्वर में आस्थावान् होने से शीघ्र समझ जाते हैं।

[५] पांचवीं कोटि हम उनकी समझते हैं, जो पठित हैं और जिनका ईश्वर-वेद-शास्त्र-कर्मवाद आदि वेदप्रतिपादित सिद्धान्तों पर पूर्ण विश्वास है। नई-नई शंकाएँ सामने आने पर इन्हें सन्देह होने लगता है। मेरे विचार में ऐसे महानुभावों के समाधान, सन्देहनिवृत्ति, वा आत्मसन्तोष के लिए पूर्ण प्रयत्न करना हमारा परम कर्तव्य है। शेष कोटि के महानुभावों के प्रति भी हमें हार्दिक प्रेम, सहानुभूति और सद्भावना से ही उनकी आत्मशान्ति, सन्देहनिवृत्ति का यत्न करते रहना चाहिये।

इन विविध कोटियों के वर्णन का यहाँ इतना ही अभिप्राय है कि आर्यसमाज ने वेद का झंडा उठाया है, इसके सामने इतने प्रकार की विचारधारायें हैं, जिन्हें हमें सन्मार्ग पर लाना है, वह भी सद्भावना, प्रेम, आदर और हित साधन की दृष्टि से।

ये हैं वेद के प्रति जनता में अनास्था होने के मुख्य कारण।

वेदाध्ययन की परम्परा

अब इस बात पर विचार करना चाहिए कि जब वेद सृष्टि के आदि से चला आ रहा है, तो इसकी अध्ययन परम्परा भी अवश्य चलती आई होगी, क्योंकि यदि ऐसा नहीं होता तो वेद हम तक पहुँच ही न पाता। अविच्छिन्न परम्परा द्वारा ही वेद हम तक पहुँचा है, यह बात सभी मानते हैं। रामायणकाल में वेदाध्ययन अच्छी स्थिति में था। बाल्मीकि रामायण में लिखा है—

"न ऋग्वेदाविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम्॥ —किष्किन्धाकाण्ड

राम ने हनुमान् की योग्यता के विषय में लक्ष्मण से कहा था—बिना ऋक्, यजुः और सामवेद के जाने कोई इस प्रकार की बात नहीं कह सकता। रामायण बालकांड, सर्ग १८ में—

सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे लोकहिते रताः॥२४॥
ते चापि मनुजव्याघ्रा वैदिकाध्ययने रताः॥२५॥

इत्यादि वचनों से स्पष्ट है कि उस समय वेदाध्ययन की परम्परा सर्वसाधारण में भी थी। महाभारत शान्तिपर्व अ० २३२।२४ में—

अनादिनिधना नित्या वाग् उत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥

सृष्टि के आरम्भ में स्वयम्भू परमात्मा से ऐसी वाणी (वेद) का प्रादुर्भाव हुआ, जो नित्य है, जिसका कभी नाश नहीं होता, जो दिव्य है। उसी से संसार में सब प्रवृत्तियाँ चलती हैं।

महाभारतकाल में भी वेद-सम्बन्धी यह धारणा विद्यमान थी। द्रोणपर्व ७।१ में—**"वेदषडगं वेदाहं···योऽधीते चतुरो वेदान्"** वनपर्व ५८।७० इत्यादि वचनों से इतना स्पष्ट है कि उस काल में वेदाध्ययन की परम्परा विद्यमान थी।

यह भी मानना पड़ता है कि महाभाष्यकार पतञ्जलि के समय में **"वेदमधीत्य त्वरिता वक्तारो भवन्ति"** वेद का केवल या तो मन्त्रपाठ मात्र अथवा साधारण अध्ययन करके ही विद्वान् समझे जाने लगे थे। उधर निरुक्त के काल में "अनर्थका हि मन्त्राः" मन्त्र के अर्थ की उपेक्षा का वाद भी कुछ न कुछ रहा होगा, क्योंकि उसमें 'कुत्स' का नाम दिया है। इस काल तक **"इत्यधिदैवतम्, इत्यध्यात्मम्"** आदि निर्देशों से यह ज्ञात हो जाता है कि जैसे महाभाष्यकार ने प्रबल पूर्वपक्ष उठा-उठा कर सूत्रों में उत्तरपक्ष का प्रतिपादन किया है, इसी प्रकार निरुक्तकार ने भी वेद के विषय में प्रबल पूर्वपक्ष उठा कर उनका संभव उत्तरपक्ष दर्शाया है। इस काल के पश्चात् बौद्धकाल में तो हिंसायुक्त यज्ञों आदि के कारण व दूसरे शब्दों में वेद अर्थज्ञान से शून्य केवल यज्ञों में विनियोग का साधन मात्र ही रह गया। यही कारण भारत में जैन और बौद्ध मत की उत्पत्ति का हुआ। उस समय भी जानता में जिन्हें प्राचीन वैदिक धर्म के अहिंसादि यज्ञों में आस्था थी, वे हिंसापरक यज्ञों से ऊबकर, वेद का यथार्थ ज्ञान न मिलने पर बौद्ध धर्म में चले गये। शंकर काल में भी यह सब कुछ रहा और कह सकते हैं कि यह ढङ्ग ऋग्वेद के उपलब्ध होने वाले प्रथम वेदभाष्यकार आचार्य स्कन्दस्वामी (६३० ई०) तक भी रहा और आगे सायणाचार्य के काल तक भी रहा। ये सबके सब वेदार्थ विषय में याज्ञिक प्रक्रिया से पराभूत रहे, यह तो स्पष्ट ही है।

इसमें इतना ही विशेष है कि स्कन्दस्वामी के लेख से स्पष्ट विदित होता है कि उसके काल में 'मंत्रों के आध्यात्मिक, आधिदैविक और अधियज्ञ तीनों प्रक्रियाओं में अर्थ होते हैं' यह परम्परा विदित थी, जिसका निरूपण हम आगे करेंगे। उस समय में याज्ञिक पद्धति का ही बोलबाला था, या क्या कारण हुआ कि स्कन्द ने मन्त्रों का अर्थ तीनों प्रक्रियाओं में नहीं किया। आचार्य स्कन्दस्वामी वेद के सब मंत्रों के अर्थ तीनों प्रक्रियाओं में होते हैं, यह केवल स्वयं ही मानता हो सो बात नहीं अपितु वह लिखता है कि निरुत्तक्तकार यास्क के मत में भी प्रत्येक मन्त्र का अर्थ तीनों प्रक्रियाओं में होता है। देखो निरुक्त स्कन्द टीका भाग ३ पृ० ३५।

हमारा कहना है कि वेदमन्त्रों के यज्ञपरक ही अर्थ की धारणा ऋषि दयानन्द के समय तक बराबर रही। इसी के कारण वेद के प्रति सर्वसाधारण को तो क्या, विद्वानों को भी अनास्था हो गई और वे वेदों को व्यर्थ की चीज बताने लगे।

इस लम्बे काल में वेद का अध्ययन कहां तक था, यद्यपि इस बात का पूरा निर्देश तो नहीं मिलता, पुनरपि जितना कुछ भी जाना जा सकता है, उसके आधार पर यही पता लगता है कि यज्ञयागादि के करने के लिए ही वेदाध्ययन की परम्परा चलती रही। अर्थशून्य इस यज्ञ-यागादि के कारण धीरे-धीरे लोगों में यही विश्वास बैठ गया कि वेद केवल संस्कारों व यज्ञादि के लिए ही हैं। जब विद्वानों में यहधारणा बैठ गई, तो सर्वसाधारण का तो कहना ही क्या।

सायणाचार्य के काल तक वेदाध्ययन की यही प्रक्रिया चलती रही, उसका भाष्य इस प्रक्रिया का परमपोषक बना। सायण के भाष्य से वेदार्थ की प्रक्रिया एक प्रकार से लुप्तप्राय हो गई, ऐसा ही कहना पड़ता है। वेदों के अर्थों का पठन-पाठन भारत के किन्हीं स्थान विशेषों में रहा हो, यह हम नहीं कह सकते। इतना कह सकते हैं कि पिछले डेढ़ सौ वर्षों में वेद का अर्थपूर्वक अध्ययन बहुत ही कम रहा।

अब हम थोड़ा सा शास्त्रीय विषय उपस्थित करते हैं—

शाखायें वेद के व्याख्यान ग्रन्थ हैं, ऐसा महर्षि दयानन्द का मन्तव्य है [देखो ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृ० २६१], अर्थात् चार वेद मूल हैं और ११२७ उनकी शाखायें हैं, दूसरे शब्दों में उनके व्याख्यान ग्रन्थ हैं—

शाखाओं की आनुपूर्वी अनित्य है, **वा त्वसौ वर्णानुपूर्वी साऽनित्या**" (अ० ४। ३।१०१ महाभाष्य) यह महाभाष्यकार का मत है, और इसमें उदाहरण 'काठकम्, कालापकम्' मौदकम्, पैप्पलादकम्' ये दिये हैं, जो स्पष्टतया शाखाग्रन्थ हैं। वेद की आनुपूर्वी को पतञ्जलि मुनि नित्य मानते हैं—**"स्वरो नियत आम्नाये अस्यवामशब्दस्य, वर्णानुपूर्वी खल्वप्याम्नाये नियता"** (अ० ५।२।५९ महाभाष्ये)। इन दोनों प्रमाणों से वेद और शाखा ग्रन्थों का भेद भी भगवान् पतञ्जलि के मत में सूर्य के प्रकाश की भांति स्पष्ट सिद्ध है।

निरुक्त के **"पुरुषविद्याऽनित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे"** (निरु० १।१) तथा **"नियतवाचो युक्तयो नियतानुपूर्व्या भवन्ति"** (निरु०१।१६) इन वचनों से भी वेद की आनुपूर्वी नित्य है, ऐसा यास्क का सिद्धान्त है, यह अवश्य मानना पड़ेगा। यद्यपि शाखा के विषय में यास्क ने स्पष्टतया नहीं लिखा, तथापि **"यदरुदत्तद् रुद्रस्य रुद्रत्वमिति काठकम्, यदरोदीत् तद् रुद्रस्य रुद्रत्वमिति हारिद्रविकम्"** (निरुक्त १०। ५)। इन उदाहरणों से व्यक्त होता है कि यहाँ अर्थ की समानता होने पर भी शाखाओं की वर्णानुपूर्वी का भेद दर्शाने के लिये ही इन्हें लिखा है। इनकी व्याख्या करता हुआ दुर्गाचार्य लिखता है— **"स एवार्थः केवलं शाखान्तरमन्यत्"**। अर्थात्—अर्थ समान है, केवल शाखाभेद से वर्णानुपूर्वी का भेद है। निरुक्त के इस स्थल की यदि महाभाष्यकार के **"योऽसावर्थः नित्यः, या त्वसौ वर्णानुपूर्वी साऽनित्या"** के साथ तुलना की जाय तो यास्क का अभिप्राय भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि यास्क भी मूल वेदों की आनुपूर्वी को नित्य और शाखाओं की आनुपूर्वी को अनित्य मानता है।

शाखाएँ ऋषि-प्रोक्त हैं और उनकी आनुपूर्वी अनित्य है। इसको स्पष्ट करने के लिये एक और प्रमाण देते हैं—

महाभाष्यकार पतञ्जलि **"अनुवादे चरणानाम्"** (अ० २।४।३) के भाष्य में लिखते हैं—**"अनुवदते कठः कलापस्य"** अर्थात् कठ कलाप के प्रवचन का अनुवाद करता है। इससे व्यक्त है कि कठादि शाखायें ऋषियों के प्रवचन हैं और उनमें कहीं-कहीं शाखाओं कों परस्पर पर्याप्त समानता है।

इन प्रमाणों से शाखाग्रन्थों की आनुपूर्वी के अनित्य होने में यत्किञ्चित् भी संदेह नहीं रह जाता, यही हम कहना चाहते हैं। शाखाओं का स्वरूप भी हमारे इस कथन से बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। अब रह जाती है यह बात कि शाखा व्याख्यानरूप ग्रन्थ हैं यह कैसे जानें? इसका उत्तर तो यही है कि जब सूक्ष्म दृष्टि से हम इन शाखाग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं, तो इनके भिन्न-भिन्न पाठों से यह बात बहुत अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है। इसके अनेक उदाहरण हैं। अब हम **"तेन प्रोक्तम्"** (अ० ४।३।१०१) पाणिनि के इस सूत्र का न्यासकार का अर्थ दर्शाते हैं। वह लिखता है—

"तेन व्याख्यातं तदध्यापितं वा प्रोक्तमित्युच्यते" (अ० ४।३।१०१। न्यास पृ० १००५)।

जिसका स्पष्ट अर्थ यही होता है कि ये कठ, कलाप, पैप्पलाद आदि शाखायें वेदों के व्याख्यान रूप ग्रंथ ही हैं। प्रोक्त ग्रंथ वह है जो व्याख्यान रूप हो या पढ़ाया गया हो। प्रवचन और व्याख्यान समानार्थक शब्द हैं, ऐसा न्यासकार का कहना है।

कहने का तात्पर्य यह है कि ऋग्यजु:साम और अथर्व ये चार वेद स्वत: प्रमाण हैं और शाखायें प्रोक्त होने से परत: प्रमाण हैं। इन शाखाग्रंथों की कोटि (दर्जा) वह नहीं, जो वेद की है। यह है भेद वेद और शाखा ग्रंथों का, जिनको संहिता के नाम से कहा जा रहा है।

इतना ही नहीं अपितु कठसंहिता के प्रवचनकर्त्ता के मत में ऋषि मंत्रों के द्रष्टा थे और वह मन्त्र की प्रतीक देकर इस सूक्त का ऋषि वामदेव है, ऐसा कहते हैं—जैसा कि—

"वामदेवस्यैतत् पञ्चदशं रक्षोघ्नं सामिधेन्यो भवंति......स वामदेव उख्यमग्निमविभस्तमवैक्षत स एतत् सूक्तमपश्यत् कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथिवीमिति" (का० सं० १०।५)।

अर्थात् "कृणुष्व पाज:०" सूक्त का द्रष्टा वामदेव ऋषि है। जो स्वयं वेद की प्रतीक देखकर उसका ऋषि बताता है, वह ग्रन्थ स्वयं वेद कैसे हो सकता है? यह साधारण बुद्धि वाले भी तत्काल समझ सकते हैं।

अब प्रसंगात् यहां एक और आवश्यक शङ्का पर विचार कर लेना भी समुचित होगा। वह यह है गोपथब्राह्मण (पूर्वार्घ) १।२९) में अथर्ववेद का आरम्भ 'शन्नो देवी०" इस मन्त्र से होता है ऐसा माना गया है। जब ऋग् यजु: साम के आरम्भिक मन्त्रों का पाठ वैसा का वैसा हमें वर्त्तमान में भी उपलब्ध हो रहा है, तो अथर्ववेद का प्रथम मन्त्र 'शन्नो देवी०" क्यों न माना जाये। इतना ही नहीं, महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि ने भी महाभाष्य के आरम्भ में लौकिक वैदिक शब्दों का भेद दर्शाते हुए जहाँ ऋग् यजु: साम के आरम्भ के मन्त्रों का पाठ वही दिया है जो वर्तमान में मिलता है—वहां चतुर्थ वेद का पाठ उन्होंने 'शन्नो देवी' ही दिया है, इससे पता लगता है कि अथर्ववेद का आरम्भ "शन्नो देवी" से ही होना चाहिए।

वादी की यह शंका पर्याप्त बलवती है, परन्तु थोड़ा विचार करने से यह स्वयं दूर हो जाती है। "तेन प्रोक्तम्" (अ० ४।३।१०१) सूत्र के भाष्य में लिखा है—

"या त्वसौ वर्णानुपूर्वी साऽनित्या। तद्भेदाच्चैतद् भवति काठकम्, कालापकम्, मौदकम्, पैप्पलादकमिति।

महाभाष्यकार के इस वचन से स्पष्ट सिद्ध है—

(क) काठक, कालापक, पैप्पलादादि प्रोक्त हैं, अर्थात् ऋषियों द्वारा प्रवचन किये हुए वा ऋषिकृत हैं।

(ख) ये काठक, पैप्पलादादि शाखा ग्रन्थ हैं, वेद नहीं, क्योंकि महाभाष्यकार इनकी आनुपूर्वी (पाठक्रम) को अनित्य मानते हैं।

(ग) ऋग्, यजु:, साम और अथर्व की आनुपूर्वी को **स्वरो नियत आम्नायेऽ-**

स्यवामशब्दस्य । वर्णानपूर्वी खल्वप्याम्नाये नित्या" (अ० ५।२।५९ महाभाष्य) । इस प्रमाण से महाभाष्कारत्यि नही मानते हैं, अनित्य कदापि नहीं । यह कहना पड़ेगा ।

(घ) प्रोक्त, प्रवचन और व्याख्यान पर्यायवाची शब्द हैं, यह न्यासकार का मत हम पूर्व दर्शा चुके हैं ।

इन सबसे यह सिद्ध है कि पतञ्जलि मुनि पैप्पलाद को शाखा मानते हैं, उसकी आनुपूर्वी को अनित्य मानते हैं, उसे वेद नहीं मानते ।

अब रही 'शन्नो देवी०' के आरम्भ में आने की बात, सो महाभाष्य के आरम्भ में वैदिक शब्दों का उदाहरणमात्र देना अभिप्रेत है । वहां वेदों की अरम्भिक प्रतीक दर्शाना मुख्य नहीं । यदि वह वेद की आरम्भिक प्रतीक मानी जावें तो पतञ्जलि भगवन् के स्ववचनों में ही परस्पर विरोध आवेगा, अतः लौकिक शब्दों का भेदमात्र दर्शाना यहाँ अभिप्रेत है, यही मानना होगा ।

अब रही गोपथब्राह्मण में आये 'शन्नो देवी०' इस पाठ, की बात । सो यह "शन्नो देवी०" पाठ पैप्पलाद संहिता का है, यह छान्दोग्यमन्त्रभाष्य के कर्त्ता गुण-विष्णु ने माना है (पृ० ६, ४८, ११७) । पैप्पलादशाखा महाभाष्यकार के मत से ऋषिप्रोक्त है, उसकी आनुपूर्वी अनित्य है, यह भली भाँति सिद्ध सो चुका । अतः गोपथ ब्राह्मण में 'शन्नो देवी०' से अथर्ववेद का आरम्भ उसको पैप्पलादशाखा का ब्राह्मण होने से, वा किसी अवान्तर शाखा का आरम्भिक पाठ होने से है, ऐसा ही मानना पड़ेगा ।

यहाँ यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि "ये त्रिषप्ताः" आदि अथर्ववेद के आरम्भ की प्रतीकें हमें श्रौत, गृह्य तथा अन्य अनेक स्थानों में मिलती है ।

अरविन्दाश्रम पाण्डुचेरी से श्री कपाली स्वामी कृत ऋग्वेदभाष्य का प्रथम खण्ड प्रकाशित हुआ था । उसके अवलोकन से ज्ञात होता है कि उन्हें भी महा-भाष्यकार पतञ्जलि के "**यद्यप्यर्थोनित्यो या त्वसौ वर्णानुपूर्वी साऽनित्या । तद्भेदाच्चैतद् भवति काठकं कालापकं मौदकं पैप्पलादकम्**" इस वचन के समझने में भ्रान्ति हुई है । वे महाभाष्य के इस वचन को उद्धृत करके लिखते हैं—"**वेदशब्दार्थनित्यत्वमभ्युपगच्छन् भगवान् पतंजलिः पदवर्णवाक्यबन्धव्यवस्थानित्यतां नाङ्गीचकार । सा च व्यवस्था प्रकाशनरूपा ऋषिकर्तृका । एवं वेदानां कृतकत्वाकृतकत्वयोरुपपत्तिर्द्रष्टव्या ।**

अर्थात् "वेद के शब्दार्थ को नित्य मानकर भी पतञ्जलि ने वेद के पद, वर्ण, वाक्य आदि व्यवस्था की नित्यता को स्वीकार नहीं किया । वह पद, वर्ण, वाक्य व्यवस्था प्रवचनरूप ऋषियों की है । इस प्रकार वेद का अपौरुषेयत्व और ऋषिकर्तृकत्व दोनों की संगति समझ लेनी चाहिए ।"

वस्तुतः कपाली स्वामी जी का उपर्युक्त लेख अयुक्त है क्योंकि उन्होंने पतञ्जलि के एक वचन को ही उद्धृत करके पतञ्जलि के मत में वेद की वर्णानुपूर्वी की अनित्यता को दर्शाया है । पतञ्जलि का दूसरा वचन जिसमें स्पष्ट रूप से पतञ्जलि ने वेद की वर्णानुपूर्वी को नित्य माना है '**स्वरो नियत आम्नायेऽस्यवामब्दस्य । वर्णानुपूर्वी खल्वप्याम्नाये नियता**' को छूआ तक नहीं । सम्भव है उन्हें इस वचन का ज्ञान ही न रहा हो । अस्तु ।

पतञ्जलि के उपर्युक्त दोनों वचनों में विरोध स्पष्ट भास रहा है। उसका परिहार करना आवश्यक है, अन्यथा पतञ्जलि का लेख उन्मत्तप्रलापवत् मानना होगा। इस विरोध का परिहार हमारी ऊपर दर्शाई संगति के अनुसार ही हो सकता है। अर्थात् पतञ्जलि के मत में पैप्पलाद आदि शाखाएँ ऋषिप्रोक्त हैं। अतः वे उनकी वर्णानुपूर्वी को अनित्य मानते हैं, और वेद को अपौरुषेय होने से वे उनकी वर्णानुपूर्वी को नित्य मानते हैं, यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है।

शाखायें प्रोक्त हैं, वेद का व्याख्यान हैं, यह हम ऊपर भली प्रकार दर्शा चुके। अब यहाँ हम एक और प्रबल शंका का समाधान कर देना भी आवश्यक समझते हैं, जो बहुत से विद्वानों के मन में भी यत्र तत्र देखी जाती है।

महर्षि दयानन्द से स्वीकृत शाखा के स्वरूप पर उठाई गई शंका का समाधान—

ऐतरेयालोचन पृ० १२७ पर श्री पं० सत्यव्रत सामश्रमीजी ने श्री० स्वामीजी के "शाखा वेदव्याख्यान हैं" इस मत का खण्डन करते हुए लिखा है—

'हन्त का नाम संहिता शाखेति व्यपदेशशून्या तेन महात्मनोररीकृता, यस्या मूलवेदत्वं मत्वा शाखेतिप्रसिद्धानामन्यासां तद्व्याख्यानग्रन्थत्वं मन्तव्यं भवेदिति त्वस्माकमज्ञेयमेव"।

अर्थात् "स्वामी दयानन्द ने किसको मूलवेद माना है, जिसमें कि शाखा शब्द का व्यवहार न होता हो, और जिसको मूल मानकर अन्य शाखाओं को उनका व्याख्यानरूप ग्रन्थ माना जा सके।"

इस आक्षेप के दो भाग हैं। एक तो यह कि मूल वेद कोई नहीं। दूसरा, कोई ऐसी संहिता नहीं जिसका कि शाखा शब्द से व्यवहार न हो।

अब हम इन दोनों आक्षेपों का उत्तर क्रमशः देते हैं—

(क) शतपथब्राह्मण का कर्त्ता याज्ञवल्क्य लिखता है—

"तदु हैकेऽन्वाहुः। होता यो विश्ववेदस इति। नेदरमित्यात्मानं ब्रवाणीति तदु तथा न ब्रूयान्मानुषं ह ते यज्ञे कुर्वन्ति। व्यृद्धं वै तद्यज्ञस्य यन्मानुषं नेद् व्यृद्धं यज्ञे करवाणीति तस्माद् तथैवर्चानूक्तमेवमेवानुब्रूयाद्धोतारं विश्ववेदसमिति" (शत० १।४।१।३५)। (तु० काण्व शत० २।३।४।२५)।

इसका भाव यह है कि किसी शाखा वाले "होता यो विश्वेदसः" ऐसा पाठ पढ़ते हैं। सो ऐसा पढ़ना ठीक नहीं। यह मनुष्यकृत पाठ है। वे यज्ञ में मानुषपाठ करते हैं। यज्ञ में मानुषपाठ पढ़ना यज्ञ की हीनता है। यज्ञ में हीनता न हो, इसलिये जैसा ऋचा का पाठ है, वैसा ही बोले **"होतारं विश्ववेदसम्"** (ऋ० १।१२।१)।

इस प्रमाण से दो बातें सिद्ध होती हैं, प्रथम—शाखाएँ जितनी हैं वे सब मानुष मनुष्यप्रोक्त वा मनुष्य-सम्बन्ध से युक्त) हैं। दूसरा—कोई ऋक् पाठ ऐसा है, जिसमें मनुष्य का कोई सम्बन्ध नहीं, और वही मनुष्य सम्बन्ध से रहित मूलवेद है।

शतपथ के इस स्थल के व्याख्यान में—

"होता य इति पाठविपरिणामस्य मनुष्यबुद्धिप्रभवतया मानुषत्वम्। यथैव

वेदे पठितं तथैवानुवक्तव्यमित्युपसंहरति तस्मादिति कीदृग्विधं तर्हि वेदे पठितमिति तदाह होतारमिति"।

(शतपथ १।४।१।३५ सा०भा०पृ० १४४)।

सायण भी "होता यो विश्ववेदस:" शाखान्तर के इस पाठ को मानुष मानता है, और "होतारं विश्ववेदसम्" को वेद का पाठ मानता है।

(ख) शतपथ ब्राह्मण का सबसे प्राचीन भाष्यकार हरिस्वामी (सन् ६३९ ई०), जो कि स्कन्दस्वामी का शिष्य था, शतपथ-ब्राह्मणभाष्य के उपोद्घात के प्रारम्भ में लिखता है—

"वेदस्यापौरुषेयत्वेन स्वतःप्रामाण्ये सिद्धे तच्छाखानामपि तद्धेतुत्वात् प्रामाण्यमिति बादरायणादिभिः प्रतिपादितम्"

(शतपथ हरिस्वामीभाष्य हस्तलेख पृ० २)।

अर्थात् "वेदों के अपौरुषेय होने से ही उनका स्वतः प्रामाण्य सिद्ध है। उनकी शाखाओं का भी प्रामाण्य तद्हेतुता से अर्थात् वेद के अनुकूल होने से बादरायणादि ने स्वीकार किया है।" हरिस्वामी के इस वचन से दो बातें स्पष्ट सिद्ध होती हैं। एक तो यह है कि कोई अपौरुषेय वेद अपनी पृथक् सत्ता रखता है, और शाखाएँ उससे भिन्न हैं। दूसरे उन शाखाओं का प्रामाण्य भी वेदानुकूल होने से ही स्वीकार किया जाता है।

हमारे उपर्युक्त दोनों प्रमाणों से सूर्य के प्रकाश की भाँति यह बात स्पष्ट सिद्ध हो जाती है कि शतपथकार तथा हरिस्वामी के मत में शाखाओं से अतिरिक्त मूल वेद अवश्य थे।

अब सत्यव्रत सामश्रमी जी के दूसरे आक्षेप का उत्तर लिखते हैं—'वैदिक साहित्य में शाखा' शब्द का व्यवहार दो कारणों से होता है। एक तो पाठभेदादि करके जो अपूर्ण प्रवचन किया जाता है वह शाखा का रूप धारण कर लेता है, जैसे तैत्तिरीय संहिता, काठक संहिता, मैत्रायणी संहिता तथा काण्व संहितादि। दूसरा शाखा शब्द का व्यवहार मूल ग्रन्थों में विना किसी परिवर्तन या परिवर्द्धन के उसके पदपाठ कर देने मात्र से भी पदकार का नाम उस संहिता के साथ में संयुक्त हो जाता है। इसका उदाहरण ऋग्वेद की शाकल संहिता है। शाकल्य ने संहिता पाठ में कोई परिवर्तन वा परिवर्द्धन किया हो, ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं। हाँ, निरुक्त अ० ६।२८ के **"वा इति च य इति च चकार शाकल्य:"** इस पाठ से ऋग्वेद के पदपाठ का कर्तृत्व शाकल्य होता है। पुराणों में भी इस शाकल्य को 'पदवित्तम' नाम से पुकारा गया। पदपाठ का कर्त्ता होने मात्र से ऋक्संहिता के साथ शाकल्य का नाम जोड़ दिया गया और उसका शाकलसंहिता या शाकलशाखा के नाम से व्यवहार होने लगा। (कई लोगों ने शाकल्य को शाकल संहिता का प्रवचनकर्त्ता माना है, वह प्रमाणाभाव से चिन्त्य है।) किसी संहिता का पदपाठ मात्र कर देने से भी उसमें शाखा शब्द का व्यवहार होता है, इसके लिये हम एक स्पष्ट प्रमाण उपस्थित करते हैं—

उखः शाखामिमां प्राह आत्रेयाय यशस्विने।
तेन शाखा प्रणीतेयमात्रेयीति च सोच्यते॥

यस्याः पदकृदात्रेयो वृत्तिकारस्तु कुण्डिनः ।
तां विद्वांसो महाभागां भद्रमश्नुवते महत् ॥

—तैत्तिरीय काण्डानुक्रम पृष्ठ ६, श्लोक २६,२७ ।

अर्थात् तित्तिरि ने इस तैत्तिरीय संहिता को उख को पढ़ाया । उसने इस शाखा को आत्रेय को पढ़ाया । आत्रेय द्वारा बनाई हुई यह शाखा आत्रेयी कहलाती है, जिसका पदकार आत्रेय है, और वृत्तिकार कुण्डिन है । इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि आत्रेय के द्वारा पदपाठ कर देने मात्र से यह तैत्तिरीय संहिता 'आत्रेयी' संहिता के नाम से भी व्यवहृत होने लगी । ठीक वैसी दशा शाकल संहिता की भी समझनी चाहिये ।

यह शाखा के विषय में कुछ निवेदन किया । इस पर विद्वानों को गम्भीरता से विचार करना चाहिये । शाखा का विषय अतीव गम्भीर अध्ययन और हस्त-लिखित सामग्री की अपेक्षा करता है और यह विषय अपने विद्वानों के परस्पर विचार विनिमय से ही हल करने का है । इस विषय पर बड़ी योजना-पूर्वक विचार करने की आवश्यकता है ।

मैं चाहता था कि ऐसे ही अन्य अनेक गम्भीर विषयों को यहाँ उपस्थित करता, जिन पर विद्वानों को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, और जिन पर आर्यसमाज और ऋषिदयानन्द स्वीकृत वेद विषयक मान्यताओं का बहुत कुछ निर्भर है, परन्तु इस छोटे लेख में उन सब पर विचार करना संभव नहीं ।

आर्यसमाज ही एक ऐसा समाज है जो वेद को प्रमुख मान कर चला है । अत: वेद विषय को उठाना और उसके लिए कष्ट करना आर्यसमाज ही कर सकता है; और किस से आशा की जावे । और तो इस विषय में कहां तक उदासीन हैं, इसका कुछ दिग्दर्शन हम कर देना चाहते हैं ।

आर्यसमाज की संस्थाओं में आजकल वेद का पठन-पाठन—

स्कूल-कालेजों में धर्मशिक्षा का घण्टा रहता था, वह भी समाप्त हुआ । जब से अपनी सरकार आयी, उसने धर्म का नाम काट ही दिया। इतना ही नहीं सोचा, या सोचने का यत्न किया कि भला वेद किस देश या जाति की बपौती है । वेद में कोई बात ऐसी नहीं जो किसी जाति या देश के विरोध में हो । हां, देवों और असुरों का वर्णन है । देव भले मनुष्य को कहते हैं, असुर पापी, अत्याचारी, परपीड़न करने वालों को कहते हैं, जो कोई भी हो, जहाँ कहीं भी हो । किसी देश-विशेष या जातिविशेष के साथ इन शब्दों का सम्बन्ध नहीं । सार्वभौमिक नियमों का नाम धर्म है, जिसका कोई विरोधी नहीं । यह बात सरकार को क्यों समझ में नहीं आती ? आर्यसमाज को साम्प्रदायिक कहना सर्वथा मिथ्या है । हमारी सस्थाएं जो पहले अंग्रेजी सरकार की कृपा पर जीवित रहती थीं, अब इन्होंने वर्तमान सरकार को अपने जीवन का आधार बना लिया है। राज्य की सहायता के बिना इनका निर्वाह नहीं । अपने इन प्रभुओं को प्रसन्न करने के लिये उनके कहने से पहले ही धर्मशिक्षा की घण्टी निकाल दी । हाँ, अभी दयानन्द या आर्य शब्द को नहीं निकाला, सो भी आगे निकला ही दिखाई देता है । कह तो यह रहे थे कि इनमें धर्म शिक्षा की घण्टी प्राय: लुप्त हो गई । उनमें संध्या वा हवन के मन्त्र तो बच्चों को सिखा देते थे; और नहीं तो वेद कितने हैं चार हैं। कौन-कौन से ? ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद,

अथर्ववेद। चलो वेदों के नाम तो बच्चों को आ जाते थे, सो भी गये।

सो इस प्रकार प्राइमरी, मिडिल, हाईस्कूल, इण्टर, बी० ए०, एम० ए० के स्कूलों और कालेजों से चाहे पुत्रों के हों या पुत्रियों के, वेद का नाम गया। हाँ, एम० ए० में संस्कृत लेने वालों को कुछ नाममात्र वेद पढ़ाया जाता है सो उनमें भी वही सायण और उनके अंग्रेजी अनुवादों के आधार पर पढ़ाया जाता है। जिसमें आर्य-परिवार के दृढ़ विचार का युवक भी (ठीक अर्थ की व्यवस्था न होने और उक्त ग्रंथ ही पढ़ाई में होने कारण) पथ-विचलित हो जाता है।

अब ले दे कर हमारे गुरुकुल हैं जो इस दिशा में बहुत कुछ यत्न कर रहे हैं। संसार का प्रवाह इतना प्रबल है कि **इनमें भी अब वेद-शिरोमणि या वेद-वाचस्पति या वेदभास्कर प्रतिवर्ष एक दो ही बनते** होंगे। स्वर्गीय महात्मा स्वा० श्रद्धानन्द जी महाराज के समय में जो बन गये सो बन गये। अब तो आयुर्वेद की ही प्रधानता प्रतीत हो रही है। वेद के नाम पर स्थापित की गई हमारी इन संस्थाओं की यह अवस्था आर्यसमाज के लिये विचार का विषय बन रही है। आचार्य महानुभाव चाहते हुए भी अपनी विवशता ही प्रकट करते हैं। अर्थात् वेदवालों को वृत्ति देने पर भी छात्र वेद विषय न लेकर आयुर्वेद ही प्राय: लेते हैं, जब कि आयुर्वेद विषय में वृत्तियाँ भी नहीं दी जातीं। वेद के अध्यापन की मुख्यता हमें लानी ही होगी, जिसके लिये आर्यजनता आशा लगाये है। वेदविषय को प्रौढ़तापूर्वक पाने की व्यवस्था हमें करनी ही होगी, यही कहना है।

वेद-सम्बन्धी कार्य की महती आवश्यकता—

हमारे उपर्युक्त सब लिखने का अभिप्राय इतना ही है कि आर्य-समाज को वेद के लिये बहुत कुछ कार्यकरना होगा। पौराणिकों ने तो वेद को केवल यज्ञपरक कह कर छुट्टी पा ली, पर आर्यसमाज ऐसा नहीं कर सकता। क्योंकि आर्यसमाज ने तो 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है' की घोषणा की हुई है, जिनके लिये वह मनु के 'सर्वज्ञानमयो हि स:' वेद सब ज्ञान का भण्डार है, यह प्रमाण उपस्थित करता है। सार्वविध ज्ञान का भण्डार वेद है, इस बात को वर्त्तमान प्रत्यक्षवादी संसार के सामने प्रमाणित करना वा हृदय में बिठा देना कितना महान् कार्य है, जो आर्यसमाज के सामने है। इस कार्य में सहस्रों त्यागी आत्माओं की आहुतियाँ पड़ें, विपुल साधन जुटें और सुदीर्घ काल तक व्यवस्था बने, तब कहीं आर्यसमाज का यह स्वप्न पूरा हो सकता है। हमें तो यह कार्य असम्भव प्रतीत नहीं होता, हाँ, घोर तप, त्याग और परिश्रम-साध्य प्रतीत होता है। आवश्यकता है कि पचास योग्य विद्वानों को सर्वथा निश्चिन्त कर दिया जावे और उनको एक साथ कम से कम बीस वर्ष के लिये ग्रन्थ आदि सर्वसामग्री सहित एक स्थान में बिठाने की व्यवस्था की जावे। प्रारम्भ में दस वर्ष के लिये दस विद्वानों को एक स्थान में पूरे पुस्तक संग्रह आदि साधनों सहित बिठाया जावे। कार्य की रूपरेखा पहले अति गम्भीरता से सोचनी होगी, विद्वान् भी वही लेने होंगे, जिन की वेद में पूर्णनिष्ठा, उत्कृष्ट मेधा और तीव्र रुचि वा गति हो। किन्हीं व्यक्तियों की जीविका का प्रबन्ध कर देना मात्र ही लक्ष्य न हो। योग्यतम व्यक्तियों को लगाया जावे, जो परस्पर एक-दूसरे के विद्याज्ञान को बढ़ाने की भावना और क्षमता वाले हों। यदि पचास विद्वानों का प्रबन्ध हो, तब विज्ञानादि सभी आवश्यक विषयों के विशेषज्ञ भी लिए जा सकते हैं।

उपसंहार—

अन्त में हमारा यही निवेदन है कि वेदविषय में आर्यसमाज गम्भीरता से विचार करे। आर्यसमाज में विद्वानों की कमी नहीं है; एक ढंग पकड़ने की आवश्यकता है। हमारी संस्थायें आर्यसमाज की दृष्टि में वेदविषय की अत्यन्त गौरवशाली संस्थायें बन सकें। इनमें ऋषि दयानन्द प्रदर्शित आर्ष पाठविधि के भिन्न-भिन्न विषयों की गद्दियाँ स्थापित हों जिनमें सभी आर्य ग्रन्थों के पठन पाठन, गम्भीर खोज तथा प्रकाशन की व्यवस्था हो और ऋषि दयानन्द और आर्य पुरुषों के स्वप्नों का साकार रूप दृष्टिगोचर हो।

संस्थान के नए प्रकाशन

१. आर्याभिविनय
   काव्यमय व्याख्या — अजिल्द १.५०
२. उपदेश मंजरी
   महर्षि के पूना व्याख्यानों का संग्रह — मूल्य २.००
३. प्रभु के चरणों में
   पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार — मूल्य १.५०
४. आदर्श परिवार
   पं० जुगलकिशोर चतुर्वेदी
   (विवाह पर बांटने योग्य पुस्तक) — मूल्य ६० पैसे
५. धर्म-सार
   स्व० पं० गंगाप्रसाद जी की अनमोल रचना साधारण जनता में प्रचार के लिए — मूल्य १.००
६. संस्कार विधि सजिल्द — मूल्य ६.००
   बड़ा साईज अजिल्द — मूल्य ४.००
८. धरती का स्वर्ग
   पं० शिवकुमार जी शास्त्री (सदस्य लोकसभा) — मूल्य १.५०

शीघ्र मंगाइए

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली--११०००५

शिव और शक्ति

जुयः ३६:१२.

ऋषिः—दध्यङ्ङाथर्वणः

देवता—आपः

OM, SHANNO DEVEERABHISHTAYA AAPO BHAVANTU PEETAYE. SHAMYORABHISRAVANTU NAH.

पदपाठः

ओ३म्, शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥

शम् SHAM. नः NAH. देवीः DEVEEH अभिष्टये ABHISHTAYE. आपः AAPAH. भवन्तु BHAVANTU. पीतये PEETAYE. शंयोः SHAMYOH. अभि ABHI. स्रवन्तु SRAVANTU. नः NAH.

महर्षिः

(शम्) (नः) (अस्मभ्यम् (देवीः) दिव्याः (अभिष्टये) इष्टसुखसिद्धये (आपः) जलानि (भवन्तु) (पीतये) पानाय (शंयोः) सुखस्य (अभि) सर्वतः (स्रवन्तु) वर्षन्तु (नः) अस्मभ्यम् ।

अभिगमः (APPROACH)

1. अभिष्टये, ABHISHTAYE—इष्ट सुख की सिद्धि के लिए, for achieving the pleasures desired.
2. पीतये, PEETAYE—पीने के लिए, for drinking.
3. देवीः, DEVEEH—दिव्य, उत्तम, good
4. आपः, AAPAH—जल, water
5. नः, NAH—हमारे लिए, for us
6. शम्, SHAM—सुख कारी हों, (may be) blissful
7. शंयोः, SHAMYOH—सुख की वृष्टि, showers of happiness

8. अभिस्रवन्तु, ABHISRAVANTU—सब ओर से करें, may shower from all sides.

उपागमः (CONCLUSION)

1. हे विद्वानो ! हमें वह उपाय बतलाएँ, जिससे हम अपने जीवन में सर्वाधिक उपयोगी जल को शुद्ध करके दिव्य और पीने के लिए सुखकर बना सकें तथा उससे अपने अभीष्ट की सिद्धि कर सकें। जल की वृष्टि हमारे लिए सुख की वर्षा करने वाली हो।

2. हे विद्वानो ! हमें वह उपाय बताएँ जिससे हम प्रभु की दिव्य शक्तियों को प्राप्त कर सकें, जिनसे हमारे अभीष्ट सिद्ध हों, हमारी निरन्तर शुद्धि हो तथा हम पर सदा सुख और शान्ति की वर्षा होती रहे।

1. O, Scholars ! please tell us the way by which we can purify water, the most essential thing for life, to get happiness and also tell how to use it for our welfare & prosperity. Please tell us how we can have blissful rains.

2. O, Scholars ! please tell us the way we can have godly powers to achieve desired objects and prosperity. May we always bloom under the showers of peace & happiness.

इस मन्त्र का देवता 'आपः' है। 'आपः' का भौतिक अर्थ है जल और आध्यात्मिक अर्थ है प्राप्त की जाने वाली दिव्य शक्तियाँ। जल के सम्बन्ध में तीन बातें मुख्य हैं—

1. पीने का पानी अच्छा और साफ़ हो।
2. पानी का उपयोग न केवल पीने के ही काम में लाया जाए अपितु और भी अभीष्ट प्रयोजनों की सिद्धि इससे की जाए।
3. वर्षा के पानी का भी इस तरह उपयोग हो कि उससे सुख व शान्ति मिले, तथा वृष्टि के लिए उपाय किए जाएँ।

उपर्युक्त भौतिक अर्थ के अतिरिक्त इस मन्त्र का आध्यात्मिक अर्थ भी है। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित शब्द विशेष ध्यान देने योग्य हैं।

आपः, देवीः, अभिष्टि, पीति, अभिस्रवण

1. आपः–जिन्हें आत्मा प्राप्त करती है। जिनको प्राप्त करने की प्यास आत्मा को हुआ करती है। जिस प्रकार शरीर यन्त्र में जल की कमी हो जाने पर प्यास लगती है और उस प्यास को बुझाने के बहाने मनुष्य बाहर के जल द्वारा अपने शरीर के अन्दर की जल की कमी को पूरा करता है उसी प्रकार जो मनुष्य अपनी आत्मशक्ति का प्रयोग करता है, उसकी आत्मशक्ति में कमी आ जाना स्वाभाविक है, वही आत्मा की प्यास 'तृषा' है। 'तृषा' और 'तृष्णा'

में भेद है। 'तृष्णा' चित्त की प्यास है, जिसे बुझाते बुझाते मनुष्य थक जाता है और वह बुझती नहीं है। एक बात और—'तृष्णा' को तृप्त करने पर आन्तरिक शक्ति बढ़ने के स्थान पर घटती है। दूसरी ओर शरीर की 'तृषा' समाप्त करने पर शरीर के अन्दर जीवन आ जाता है इसलिए पानी को संस्कृत में 'जीवन' भी कहते हैं। इस जल-जीवन की महत्ता ग्रीष्म की गर्मी में चलते हुए थके माँदे पथिक की वाणी में सुन सकते हैं, आयुर्वेद को जानने वाले उस वैद्य की वाणी में सुन सकते हैं, जो प्राय: उठकर लोटा भर ठंडा पानी पीने की सलाह दिया करता है। शरीर की तरह आत्मा की भी तृषा—प्यास—हुआ करती है। यह तृषा कमजोर नहीं करती अपितु आत्मा में चेतना और जागरूकता ले आती है। आत्मा की इस तृषा को बुझाए बिना कोई भी व्यक्ति आत्मशक्ति का निरन्तर उपभोग नहीं कर सकता। आत्मा की इस प्यास को—शक्ति की कमी को—बुझाने का एकमात्र उपाय है भक्ति। भक्ति में स्तुति, प्रार्थना और उपासना तीनों का समन्वय है। किसी भी महापुरुष का जीवन देखेंगे—जिन्होंने अपनी आत्मशक्ति का उपयोग किया हो—तो ज्ञात होगा कि भक्ति उनके जीवन का एक अभिन्न अंग थी। इस भक्ति से परमात्मा से उसकी शक्तियाँ प्राप्त की जाती हैं। चूंकि प्राप्त की जाती हैं—अपने आप नहीं मिल जातीं—इसलिए इन शक्तियों का नाम 'आप:' है।

प्रश्न उठता है कि परमात्मा की शक्तियाँ हैं क्या ?

गुण शक्ति है, अवगुण अशक्ति है। जिस व्यक्ति में गुण जितने ही अधिक होंगे उसमें उतनी ही अधिक शक्ति होगी। जल की शक्ति उसके अपने गुण हैं, विद्युत् की शक्ति और विद्युत् के गुण दोनों में कोई भेद नहीं है। अत: परमात्मा की शक्ति प्राप्त करने का अर्थ हुआ परमात्मा के गुणों को धारण करना। परमात्मा के गुणों का कैसे पता चले ? जल और विद्युत् आदि के गुणों—शक्तियों—का ज्ञान कैसे होता है ? जल की और विद्युत् की क्रियाओं को देखकर। किसी व्यक्ति के गुणों का पता उसके व्यवहार और कर्मों से लगता है। परमात्मा के गुण का भी ज्ञान उसके कर्मों से ही होता है।

विष्णोः कर्माणि पश्यत

इसलिए संसार में परमात्मा के कर्मों को देखो। उसके कर्मों का गहरा अध्ययन करने की शक्ति प्राप्त करो। उसके कर्मों का गहरा और सही—यथार्थ अध्ययन करने पर तुम्हें परमात्मा के गुणों का पता चलेगा। यही गुण परमात्मा के व्रत हैं।

यतो व्रतानि पस्पशे

परमात्मा के इन कर्मों से उसके गुणों—व्रतों—शक्तियों का स्वरूप स्पष्ट होता है। उन्हीं व्रतों को तुम धारण करो। उन व्रतों को धारण करने से तुम में प्रभु की शक्तियाँ अपने आप आ जाएँगी। जिन्होंने इन व्रतों को धारण कर लिया, वे आत्मशक्तिमान् बन गए—

अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम

परमात्मा की शक्ति अदिति है। वही माँ है। प्रभु 'शिव' हैं तो अदिति 'शक्ति' है। 'शिव' और 'शक्ति दोनों अभिन्न हैं। यह 'अदिति' जो प्राप्त कर लेते

हैं वे 'अनागस' निष्पाप हो जाते हैं। इसी अदिति के कारण प्रभु 'आदित्य' है। जो उस 'अदिति' को प्राप्त कर लेते हैं 'आदित्य' बन जाते हैं। भगवान् राम, भगवान् कृष्ण तथा अन्य महापुरुषों में यही अदिति थी। जिसके अन्दर यह शक्ति आ जाती है वह फिर लौकिक सामान्य पुरुष नहीं रह जाता, अलौकिक असाधारण पुरुष बन जाता है और ऐसे व्यक्ति को सामान्य जन अपने स्तर से बहुत ऊँचा पाकर 'अवतार' समझने लगते हैं। अवतारी पुरुष परमात्मा के अवतार नहीं अपितु परमात्मा की शक्ति के भंडार होते हैं। परमात्मा की शक्ति जिनमें आ जाती है, जो उस अदिति 'शक्ति' को माँ बनाकर अपने में बसा लेते हैं, 'शिव' भी उनका सखा हो जाता है।

इस प्रकार परमात्मा के गुणों—शक्तियों को प्राप्त करने से ही मनुष्य ऊँचा उठ सकता है।

२. देवी—ये शक्तियाँ दिव्य हैं। लौकिक नहीं है, क्योंकि प्रभु स्वयं अलौकिक हैं। लोक में वास करते हुए भी लोक भिन्न हैं। ये 'देवी:' 'आप:'—प्रभु की दिव्य शक्तियाँ जिस पुरुष में आ जाती हैं वह 'देव' बन जाता है। उसकी आँखों, कानों, हाथों, पैरों, तथा वाणी आदि सभी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों में दिव्यता, उसके मन एवं चित्त में दिव्यता आ जाती है। ये इन्द्रियों में दिव्यता लाकर उनको पूर्ण शुचि, पूर्ण पवित्र कर देती हैं, उनको नहला देती हैं। जिस प्रकार भौतिक जल से भौतिक शरीर को नहला धुलाकर स्वच्छ, वर्चस्वी और आकर्षक बनाया जाता है इसी प्रकार इस अन्तः शरीर और इन्द्रियों को धोने का एक मात्र 'आप:'—जल—है प्रभु की शक्ति, उनके गुण।

३. अभिष्टि—इन शक्तियों को प्राप्त कर लेने पर मनुष्य का कोई भी अभीष्ट असिद्ध नहीं रहता।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु...

४. पीति—अभीष्टों की सिद्धि के साथ-साथ मनुष्य की आन्तरिक वृद्धि होती चली जाती है। यही वृद्धि वास्तविक वृद्धि है। यही समृद्धि हैं।

५. अभिस्रवण—प्रभु के गुणों और शक्तियों को प्राप्त कर लेने पर उस व्रतशील मनुष्य के मन में सब ओर से सुख और शान्ति की वर्षा होती है। शाश्वत सुख और शान्ति प्राप्त करने का, इसलिए, एक ही उपाय है कि व्रत करें। प्रभु के गुणों को धारण करें, उसकी शक्तियों को प्राप्त करें।

१९७६-७७ का वर्ष

सत्यार्थ-प्रकाश शताब्दी वर्ष

के रूप में मनाइए

—अर्जुन देव आर्य विद्यावाचस्पति

आधुनिक समस्याएं और हमारा कर्त्तव्य

ओ३म् जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।

सहस्रधारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ।।

अ०१२ का १ सू.४५ मं.।।

मानव समाज आज अनेक कठिन समस्याओं के दौर से गुजर रहा है । वास्तव में यदि देखा जाए तो परमेश्वर ने सब प्राणियों के लिए सृष्टि रचने के साथ-साथ ही उनके खाने-पीने, रहने-पहनने तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए सब कुछ प्रदान किया । किसी भी प्रकार की कोई त्रुटि हमें उसके कार्य में दिखाई नहीं देती, लेकिन अज्ञानवश हमें कई समस्याएँ दिखाई देती हैं ।

प्रत्येक समुदाय की समस्याओं को ठीक-ठीक समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने समाज की सामान्य रूपरेखा अर्थात् स्थिति के संबंध में स्पष्ट और सही धारणा रखें । वर्तमान समाज नवीन आदर्शों को जन्म देने के लिए प्रसव वेदना से व्याकुल है । आज सबसे बड़ी समस्या यह है कि 'आज का मानव अपनी तृष्णाओं को बहुत अधिक बढ़ा चुका है । इनके बढ़ने से हमारे सामने कभी खाने की, कभी पीने की' कभी कपड़े की, रहने की व कभी नौकरी की समस्याएँ आती हैं ।

इन सभी से छुटकारा पाने के लिए हमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना होगा—

आहार-विहार नियमित हो

आजकल लोग प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक "हाय भोजन, हाय भोजन" करते हैं । किन्तु हम भोजन क्यों करते हैं ? कैसा करना चाहिए ? इसका उचित उत्तर हजारों में से कोई विचारशील व्यक्ति ही दे सकता है । कौन सा आहार ठीक है इसे देखे बिना हम सारा दिन पशुओं की भांति चरते हैं । भर्तृहरि शतकम् में धर्म पूर्वक आचरण की शिक्षा देते हुए कहा गया है :—

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्

धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ।। भर्तृहरि ।।

"अर्थात् आहार, निद्रा, भय और सन्तानोत्पत्ति तो पशुओं और मनुष्यों में समान हैं किन्तु उनमें से धर्माचरण करना ही मनुष्य की विशेषता है व जो धर्म का आचरण नहीं करता, वह पशु के तुल्य है ।"

विषम और अहितकर भोजन करने से कई रोगों की उत्पत्ति होती है। राष्ट्र के अन्न और धन दोनों का अपव्यय होता है। अधिकतर डाक्टरों का यही मत है कि ९९% मनुष्य अधिक आहार ग्रहण करते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि हम जीभ के दास हैं। हमारी रसना सदैव स्वादिष्ट भोजन के लिए लपलपाती है। हम यह जानते हुए भी कि जिह्वा को तृप्त करने वाली मछली सदैव काँटे में फँस जाती है; उसकी ओर दौड़ते हैं।

अतः हमें भी अभक्ष्य और भक्ष्य पदार्थों के लाभ हानि को विचार कर अभक्ष्य पदार्थों का सर्वथा परित्याग करना चाहिए। ऋग्वेद में भी कहा है :—

"निर्ऋतिर्दुर्हणावधीत् पदीष्ठ तृष्ठामा ॥" ऋ० १।३८।२।६॥

"अर्थात् तृष्णा नष्ट होने के साथ ही विपत्तियाँ भी नष्ट होती हैं, जितनी अधिक तृष्णा होगी उतनी बड़ी आपत्ति।"

जीवन सादा, व विचार उच्च हों

आज जहाँ देखो हिप्पीवाद फैल रहा है। फैशन की सर्वत्र होड़ सी है। आज का का व्यक्ति विशेषकर नवयुवक व युवतियाँ हिप्पीवाद में गर्व अनुभव करते हैं। वे यह नहीं सोचते कि मनुष्य विचारों से, चरित्र से महान् बनता है; न कि कपड़ों से। जहाँ कपड़ों को केवल इसलिए पहना जाता है कि हमारा शरीर सर्दी-गर्मी बरसात से बचा रहे, वहाँ आजकल कपड़ों को फैशन के तौर पर पहन कर हजारों रुपया साज-सज्जा में बर्बाद किया जाता है। सर्दी-गर्मी की परवाह न करते हुए। जब हम फैशन के तौर पर कपड़ों को पहनते हैं तो अन्त में एक न एक दिन स्वास्थ्य पर प्राकृतिक मौसम का असर होकर ही रहता है तथा हम कई दिनों के लिए चारपाई पकड़ लेते हैं।

आज का युवक एक तो काम वासना की आग में ही जल उठता है, दूसरा युवतियों का पाश्चात्य फैशन उनकी इस आग में घी का कार्य करता है। आज का युवक पाश्चात्य प्रसाधन सौन्दर्य को देखकर उसके पीछे भागता है व पतंगे के समान जल जाता है। भँवरे के समान सौन्दर्य प्रसाधनों की सुगन्धि के पीछे भागते हुए अपने जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर समाज के लिए कई समस्याएँ खड़ी कर देता है।

आज की अनेक भारतीय ललनायें पाश्चात्य परिधानों को डुलाती तितली बनी फिरती हैं। पाश्चात्य नारी का अर्धनग्न परिधान, नारियों के धन लज्जा को समाप्त कर भारतीय संस्कृति पर कुठाराघात कर रहा है किन्तु वैदिक धर्म के ठेकेदार कहलाने वाले भी उन्हें और प्रोत्साहित करने में मस्त हैं। कितना ही धन हम इस प्रकार अपव्यय करते हैं।

अतः हमें चाहिए कि साज सज्जा वा फैशन को त्यागकर, सादा जीवन बिताते हुए स्वस्थ रहें, विचारों को उच्च बनाते हुए चरित्र को उज्ज्वल करें जिससे इन अपव्यत की बेकार समस्याओं से छुटकारा मिल सके।

पुरुषार्थी बनें निराशावादी नहीं

जब तक हममें पुरुषार्थ की भावना नहीं होगी तब तक सफलता हम से दूर रहेगी। महान् विजेता नैपोलियन सदा यही कहता था कि "असम्भव शब्द तो मूर्खों के शब्द कोश में पाया जाता है।" अर्थात् वह यह मानता था कि मनुष्य

पुरुषार्थ के द्वारा अपने जीवन की समस्याओं का समाधान कर सकता है। हमें सदा यह याद रखना चाहिए कि "मनुष्य कभी अभागा नहीं होता, धारणाएं उसे अभागा और हीन बनाती हैं।" अतः हमें अपने विचारों को उच्च बनाना चाहिए। उच्च विचारों द्वारा ही मनुष्य निराशा में आशा की किरणें प्राप्तकर पुरुषार्थी बनता है। ऋग्वेद के दसवें मंडल, अठारहवें सूक्त के चौथे मंत्र में परमेश्वर ने भी उपदेश दिया है—

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधानि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।

शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्त र्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ ऋ० १०।१८।४॥

इसमें परमात्मा ने मनुष्यों को उपदेश करते हुए कहा है—'मैं मनुष्यों के लिए जीवन की एक मर्यादा निश्चित करता हूँ। मनुष्यों में कोई भी इस मर्यादा का उल्लंघन न करे। क्या है वह जीवन की अवधि ? प्रत्येक मनुष्य कम से कम सौ वर्ष और अधिक जीवन धारण करे और यदि मृत्यु बीच में ही आक्रमण करदे तो ब्रह्मचर्य, "विज्ञान अर्थात् विशेष ज्ञान वेद" व पुरुषार्थ के द्वारा उसे दूर भगाए।

अर्थात् जब मनुष्य के लिए परमेश्वर ने मृत्यु को दूर भगाने का उपाय बता दिया तो क्या इस जीवन की आधुनिक समस्याओं से मनुष्य को घबराना चाहिए ? नहीं। "हमें घबराने के बजाय सदैव पुरुषार्थी बनना चाहिए।" परमात्मा के विशेष ज्ञान "वेद" के अनुसार अपने जीवन को ढालना चाहिए।

ऋग्वेद में एक अन्य मंत्र में कहा है—**ईशानः वधं यवय॥ ऋ.१।२।५**

अर्थात् मनुष्य अपनी परिस्थितियों का निर्माता आप है। जो जैसा सोचता है वह वैसा ही बन जाता है।

प्रत्येक स्थिति में मुस्कराते रहें

ऋग्वेद के अनुसार—**विश्वेदानीं सुमनसः स्याम ऋ. ६।५२।५**

अर्थात हम सर्वदा प्रत्येक स्थिति में हँसते और मुस्कराते रहें। "सामान्य जीवन की छोटी-छोटी आदतें हमारे पूर्ण जीवन का निर्माण करती हैं, वे हमारे जीवन को मधुर तथा कटु बना देती हैं।"

आपने स्वयं भी देखा होगा कि जो लोग हँसते-मुस्कराते मिलते हैं वे आप पर अपना सुन्दर प्रभाव डालते हैं। मुस्कराता व्यक्ति आपको प्रिय लगता है। उसकी मुस्कराहट से आपकी उलझनें भी ढीली पड़ जाती हैं। सद्भावनाएं जाग जाती हैं। इस प्रकार हमें सदा एक दूसरे को मुस्कराते हुए मिलना चाहिए जिससे प्रत्येक व्यक्ति की स्वयं की उलझनें भी समाप्त हों तथा समाज भी समस्याओं से दूर रह सके।

जो लोग स्वाभाविक तरीके से मुस्कराने की आदत बना लेते हैं उनके स्वास्थ्य पर भी इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। दुनियादारी की चिन्ताएं भी उन्हें ज्यादा तकलीफ नहीं पहुँचातीं। इसलिए मुस्कराहट के जादू का हमेशा सदुपयोग कीजिए।

परस्पर उन्नति में सहयोग दें

उन्नति के लिए कुछ त्यागने को तैयार रहना चाहिए। परमात्मा की ओर से उपलब्ध पदार्थ सबके लिए हैं। वे सबको मिलते रहने चाहिएं। उनके वितरण में हमें एक दूसरे के बीच बाधक नहीं बनना चाहिए। उल्टा प्राप्त कराने में सहयोग प्रदान करना

चाहिए। जब मनुष्य एक दूसरे का साथ देने में तत्पर रहता है तो सदैव उन्नति ही होती है, समस्याएँ स्वयमेव सुलझ जाती है। इस प्रकार जब मनुष्य-मनुष्य के बीच खड़ी भेदभाव की दीवार गिराकर मानव की एकता समानता का मार्ग दर्शन नहीं किया जाता तब कहीं सांसारिक समस्याएं रहेंगी। हमें अपनें अन्दर से आत्महीनता व भेद-भाव की भावना को दूर रखकर ही समस्याओं को सुलझाना चाहिए। मनुष्य मात्र के लिए अथर्ववेद में उपदेश है कि "वे (मनुष्य) माता-पिता, स्त्री-पुरुष, मित्र-भृत्य तथा पड़ौसी आदि सब के साथ वैर विरोध त्यागकर उसी प्रकार प्रेम और आत्मीयता का व्यवहार करें, जिस प्रकार गाय अपने बछड़े को प्यार करती है।" ऋग्वेद में भी कहा है :—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरा ॥ ऋ०५।६०।५॥

"अर्थात मनुष्यों में कोई ऊँच-नीच नहीं, सब भाई-भाई हैं जाति-पाति के आधार पर कोई ऊँच-नीच नहीं ॥

वर्तमान पर चिन्तन करें

हमें भूत व भविष्य के सुख की ओर ध्यान न देकर वर्तमान पर चिन्तन करना चाहिए। मनुष्य सदैव अपने भूत व भविष्य के सुख की ओर ध्यान देता रहता है, जिससे उसकी एक और समस्या बढ़ जाती है। मनुष्य को भविष्य में सुख की आशा करने से बैचैनी पैदा होती है क्योंकि वह उस सुख को वर्तमान में उपलब्ध नहीं कर पाता। सदैव भूतकाल के सुख का ध्यान उसे दुःख पैदा करता है।

आस्तिक बनें

मनुष्य में सद्‌गुणों की वृद्धि का इससे बढ़कर और कोई मार्ग नहीं है। प्रत्येक उद्देश्य की पूर्ति के लिए आदर्श की आवश्यकता होती है। यह जगत् का सार्वत्रिक नियम है :—अच्छे से अच्छे पुरुष को भी यदि हम आदर्श रूप में रखेंगे तो भी उसमें अच्छें गुणों के साथ कुछ न कुछ कमियाँ अवश्य मिलेंगी, परन्तु ईश्वर का आदर्श ही एक ऐस्सा आदर्श हैं जिसमें कमी और त्रुटियों की गुजाइश नहीं है। अच्छे मनुष्य आंशिक आदर्श का तो काम दे सकते हैं परन्तु पूर्ण आदर्श ईश्वर के सिवा कहीं नहीं मिल सकता। अतः हमें अपने अन्दर सद्‌गुणों को धारण करने के लिए परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए जिससे कि हमारी समस्याएँ कम हो सकें।

हम देखते हैं कि प्रत्येक देश में समाज के विकास के हर चरण में विद्यार्थी औरयुवा ही आगे बढ़ते हैं। समाज का व्यस्क समुदाय संदिग्ध अवस्था रहता है अथवा रूढ़िग्रस्त होकर बिलकुल जड़ बना रहता है। आज कितने ही स्वर्ग के ठेकेदार बनकर स्वर्ग की सीटें सुरक्षित करने में लगे हैं।

हमें आधुनिक समस्याओं का समाधान करने के लिए नियमित आहार, सादा जीवन—उच्च विचार वाला—बनकर पुरुषार्थ करते हुए मुस्कराकर, वर्तमान पर चिन्तन करना होगा। जिससे हम अपनी तृष्णाओं को कम करते हुए सदैव ऊँच नीच, भेद-भाव की बुराई को दूर हटाकर परस्पर मित्र भाव से परमात्मा के सच्चे पुत्र व पुत्रियाँ बनकर रह सकें।

संसार के प्रत्येक परिवार में परमात्मा की अमरवाणी चारों वेदों का हिन्दी भाष्य पहुंचाने का व्रत लें

स्वास्थ्य चर्चा

—अन्जना

अंधेरे से रोशनी की ओर

भारत में लगभग डेढ़ करोड़ व्यक्ति अन्धे हैं। इनमें से अधिकतर मोतियाबिन्द या रोहा नामक बीमारियों के कारण आँख से देखने में असमर्थ हैं। ऐसे बच्चों की भी संख्या कम नहीं है, जो विटामिन-ए की कमी के कारण धीरे-धीरे आँख से देखने की शक्ति खोते जा रहे हैं। विकासोन्मुख संसार में सर्वत्र इस प्रकार के अन्धों की संख्या बहुत अधिक है। इस समस्या की विशालता के कारण विश्व स्वास्थ्य संघटन ने १९७६ में अंधपन की रोकथाम को अपने प्रयास का मुख्य लक्ष्य घोषित किया है।

नई दिल्ली के विश्व स्वास्थ्य संघटन के सूचना अधिकारी, श्री नेड विलार्ड, ने हाल में एक भेंटवार्ता के दौरान कहा : दुःख की बात यह है कि भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया में कितने ही अन्धे व्यक्ति यह मान कर चल रहे हैं कि उनकी नेत्र-ज्योति अब फिर वापस नहीं आ सकती। किन्तु, सौभाग्यवश विकासोन्मुख देशों में अधिकांश अन्धपन की रोकथाम सम्भव है। विश्व स्वास्थ्य संघटन विश्व-दिवस और अपने कार्यक्रमों द्वारा इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट कर रहा है और ऐसे कार्यक्रम संगठित करने में सहायता दे रहा है, जिनके द्वारा अन्धपन की रोकथाम के लिए उपाय किये जा सकें।

अनुमान लगाया गया है कि भारत में लगभग ९० प्रतिशत अंधपन की रोकथाम की जा सकती है। केरल, आन्ध्रप्रदेश, बिहार, उड़ीसा और तमिलनाडु जैसे कुछ राज्यों ने विटामिन-ए की कमी को दूर करने के लिए कार्यक्रम लागू किये हैं। इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत पाँच वर्ष से कम आयु के प्रत्येक बच्चे को वर्ष में दो बार विटामिन-ए की पर्याप्त खुराकें दी जाती हैं। मोतियाबिन्द के कारण न देख पाने वालों के लाभार्थ स्थानीय संगठनों, लायन्स क्लबों और रोटरी क्लबों ने परस्पर सहयोग द्वारा मोतियाबिन्द के आपरेशन के लिए शिविर आदि की व्यवस्था की है।

डा० विलार्ड ने कहा : अनेक देशों ने विश्व स्वास्थ्य संघटन के मार्गनिर्देशन में कार्यक्रम चला रखे हैं। भारत में नेत्र-शिविरों का आयोजन किया गया है। इस सिलसिले में, लोगों को पहले ही से यह सूचित कर दिया जाता है कि अमुक-अमुक स्थानों पर अमुक-अमुक तिथियों को नेत्र-शिविर आयोजित होंगे। वहाँ किसान आते हैं। उन्हें वहाँ कई-कई दिनों तक रुकना पड़ता है। मोतियाबिन्द के आपरेशन में कुछ ही मिनट लगते हैं और खर्चा भी कुछ अधिक नहीं पड़ता है।

आशा की जाती है कि अंधपन की रोकथाम के लिए चलाये जा रहे इन कार्यक्रमों के फलस्वरूप बहुतों को उनकी नेत्र-ज्योति फिर प्राप्त हो जायेगी।

दयानन्द के संदेशों का, हो प्रचार जन-जन में

दयानन्द के संदेशों का हो प्रचार जन जन में
या यों कहो वेद की ज्योति बिखरे हर आँगन में
नहीं कभी बाधा की चिन्ता ग्रसे हमारे मन को
न्याय धर्म का मर्म प्रसारें रखें सदा हम प्रण को
दलित दुखी को गले लगाएं देकर नूतन आस
संगठन सूत्र में सदा हमारा रहे अडिग विश्वास
स्तुति और निन्दा से अपना कभी न डोले मन
थामें हम पाखंड खंडिनी हाथों में हर क्षण
नहीं निराशा कभी सताए रहे अडिग विश्वास
द्वारा निज श्रम के काटेंगे हम जगती के पाश
राष्ट्र और जाति का वंदन यह है अपनी आन
प्रसन्न मना हम सदा करेंगे मातृभूमि का मान
कायर सम हम कभी न त्यागें कर्म योग के यश को
शिखरों से सागर तक लाएँ वेद ज्ञान के रथ को
तम की काली रात भले हो हम न हुए निराश
जन जन की संगठन शक्ति पर हमको है विश्वास
नहीं आपदाओं से डरते अभय हमारा मन है
ज्ञानदीप की ज्योति दिखाती हमें राह हर क्षण है
नमन किया करते सज्जन को यही हमारी आन
ज्ञान मार्ग के पथिक बने हैं यही हमारी शान
नष्ट हो रही मर्यादा का करने पुनरुद्धार
कार्य क्षेत्र में आज स्वयं को हम हैं रहे उतार
पुंज ज्योति की हमें दे गया वह महान् संन्यासी
जग में उसे प्रसारेंगे हम बन अविचल विश्वासी

—बनारसी सिंह

पृथ्वी का स्वर्ग

श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी

कन्या का जन्म—एक धर्मातमा सद्गृहस्थी रईस के गृह में कन्या ने जन्म लिया। लालसा पुत्र की थी परन्तु कामना पूरी न हुई। लोक मर्यादा रखने के लिए तो प्रभु का धन्यवाद किया परन्तु मन में व्याकुलता अवश्य बनी रही। ग्यारहवें दिन नामकरण संस्कार हुआ विद्वान् पंडित बुलाये गए। यज्ञ हवन हो चुका। अब नाम रखने की क्रिया की बारी आई। पुरोहित के कथनानुसार रईस पिता ने बालिका के नाक के अग्रभाग को अंगूठे और तर्जनी से पोला-पोला स्पर्श कर के बालिका की आँख में आंख मिलाकर ज्योंही "कोऽसि" शब्द कहे कि बालिका की आंखें पिता को ऐसी खुली हुई प्रतीत हुईं जैसे कि वह ध्यान से सुन रही हो। बालिका के मुख मण्डल पर प्रकाश तथा मुस्कान की आभा प्रतीत होने लगी। नाम उसका सत्यवती रखा गया।

पुरोहित अनुभवी और चतुर था उसने कहा कि "राव साहब ! आप बड़े भाग्यवान् हैं। यह कन्या संस्कारी जीव है, अच्छे नक्षत्र में इसने जन्म लिया है, यह अपने नाम को प्रकाशित करेगी। आप के नाम को भी उज्ज्वल करेगी। मेरी यह बात नोट कर लें। इसे अच्छी शिक्षा और उत्तम विद्या देना।" राव साहब ने सुना, कुछ हर्षित भी हुवे। परन्तु उनकी धर्मपत्नी को कन्या के संस्कारी जीव होने का पूरा विश्वास हो गया। वह जानती थी कि इस जीव ने मेरे गर्भ काल में मेरे जीवन में बड़ा परिवर्तन पैदा किया है और वह ९ मास नितांत स्वस्थ, शान्त, सन्तुष्ट प्रसन्न रही है। अब माता सावधान हो गयी और संस्कारी बालिका की सम्यक् देख-रेख करने लगी।

स्वर्ग का भवन बनाती हूँ

बाल्यावस्था में बालिका मुहल्ले की बालिकाओं के साथ खेलती। मिट्टी उठा-उठा कर ढेर लगा देती, जल से गूंथ मकान बनाने लग जाती। प्रतिदिन उसका यही खेल रहता। माता उसे देखकर कहती

कि "क्या तू पूर्व जन्म में कुम्हारिन तो न थी ? अथवा शिल्पी तक्षक के गृह में तो जन्म न लिया था कि प्रतिदिन मिट्टी को गूंथ भवन बनाती रहती है ? वता तू यह सब क्यों बनाती है ? बालिका ने उत्तर दिया कि "मैं स्वर्ग का भवन बनाती हूँ।" माता सुनकर चकित हो गई कि स्वर्ग का नाम इस नन्ही वालिका को किसने वताया ?

पतिदेव से इसका वर्णन किया। वह सत्सङ्गी थे। पति ने कहा कि "तू जो कथा सुनने जाया करती थी वहाँ कथावाचक स्वर्ग की कथा सुनाते थे। याद नहीं ?" पत्नी ने कहा —"हां हां उन दिनों मैं स्वर्ग की कथा सुनना वहुत पसंद करती थी कि स्वर्ग मिले, परन्तु वह कथावाचक कहा करते थे कि प्रत्येक प्राणी को दो प्रकार की चाह रहती है, एक तो सुख मिले, दूसरे दु:ख न आये और साधन वताते थे कि जो लोग वड़े-बड़े यज्ञ आदि पुण्य कर्म करते हैं उनको सुख विशेष की प्राप्ति होती है। वे देवलोक में सुख भोगने के लिये जाते हैं, वहाँ न दु:ख है न मृत्यु। अपितु वहाँ सब सुख प्राप्त होता है। दुग्ध और मधु की नदियाँ वहती हैं, सब प्रकार के सुख मिलते हैं। और बहुत कुछ सुनाते थे, परन्तु मुझे तो सव स्मरण नहीं कि क्या-क्या मिलता है। एक दिन स्वप्न में भी मैं स्वर्ग में फिरती रही।"

पति—फिर वह चाह (रुचि) रोकी क्यों ?

पत्नी—मैं उनका अभिप्राय यह समझी कि यज्ञों से स्वर्ग प्राप्त होता है। हमको यज्ञ का ज्ञान ही नहीं। हमको स्वर्ग कैसे मिल सकता है ? अतः विचार छोड़ दिया। अब आपके स्मरण कराने पर कथा का प्रसंग याद आ गया। इधर बालिका ने भी कहा। वह तो गर्भ में थी, क्या उसने सुन लिया होगा अथवा मेरी लालसा का उस पर प्रभाव पड़ा है ?

पति—माता जो खाती है, पीती है, करती है, सुनती है, जो-जो विचार करती, वनाती, सोचती है, उन सब का प्रभाव गर्भ-गत जीव पर पड़ता है। यदि जीव के अपने संस्कार भी वैसे हों तो माता के हृदय को अपने संस्कारों की पुष्टि में वदल देता है। क्या अब यज्ञ कराने की तुम्हारी इच्छा वनती है ? यदि चाहो तो प्रारम्भ कर दें।

पत्नी—इच्छा तो होती है परन्तु मैं तो अनपढ़ हूं और गृह-कार्य से भी अवकाश नहीं मिलता। सोच लूं।

स्वाहा का प्रभाव

सत्यवती की आयु पाँच वर्ष की हो गई। एक दिन उसने अपने साथ की बड़ी लड़कियों को देखा कि बस्ता उठाये जा रही हैं। वह भी उनके पीछे-पीछे हो ली। वे पाठशाला में पहुंच गईं। वहाँ पुत्रियों ने प्रार्थना का भजन गाया और फिर एक वेदी पर एकत्र होकर मन्त्र पढ़ने लगीं। सत्यवती बड़ी प्रसन्न हुई। आँगन में मिट्टी के ढ़ेर बनाने लग गयी। थोड़ी देर बाद उसे वेग से आती ध्वनि सुनाई दी 'स्वाहा'! 'स्वाहा'!! सत्यवती चौंकी, देखा तो अग्नि जल रही है और पुत्रियाँ अग्नि में कुछ फेंक रही हैं। यह भी दौड़कर मिट्टी को छोड़कर वहां जा खड़ी हुई।

एक तो अग्नि की प्रकाशमय ज्वाला खूब वेग से उठती थी दूसरे जब वे सामग्री डालतीं तो सुगन्धि आती तथा स्वाहा-स्वाहा के शब्द से सत्यवती बहुत ही हर्षित हो जाती। हवन समाप्त होने पर जब पुत्रियाँ कमरों में चली गईं तो यह भी एक पुत्री के साथ बैठ गई। सबके नाम बोले गए। सबने अपनी-अपनी बारी पर उत्तर दिया। परन्तु सत्यवती का नाम न बोला गया और कक्षा में शान्ति छा गयी। यह दौड़ कर अध्यापिका के पास जा खड़ी हुई और कहा कि मेरा नाम क्यों नहीं बोला—

अध्यापिका —तुम कौन हो?

बालिका—मैं सत्यवती हूं।

अध्यापिका—तुम्हारा नाम अंकित नहीं है। तुम प्रविष्ट हो जाओ। अपने माता-पिता से कहो, वह तुम्हें प्रविष्ट करा जावें।

सत्यवती सुनते ही घर दौड़ी गई। माता से कहा कि मुझे पाठशाला में प्रविष्ट कराओ। वहाँ स्वाहा-स्वाहा करूंगी।

माता—तुम्हारे पिताजी आ जावें। कल तुम को प्रविष्ट कर आवेंगे।

दूसरे दिन पिताजी ने सत्यवती को साथ लेकर उसे पाठशाला में प्रविष्ट करा दिया। वे पुत्रियां जिनके साथ वह कल बैठी थी, उस कमरे में न थीं। और पिताजी भी चले गये। पहला दिन था, सत्यवती घबड़ाई और उठकर उसी कल वाले कमरे में चली आई,

अध्यापिका से कहा कि मैं प्रविष्ट हो गई हूं अव मुझे भी स्वाहा-स्वाहा कराओ। अध्यापिका वोली, "यहाँ आठवे दिन स्वाहा होता है। प्रतिदिन करना हो तो अपने गृह पर माता-पिता के साथ किया करो और अव तुम अपने कमरे में जाकर बैठो, वहाँ पढ़ो, इस कमरे में तीन वर्ष पश्चात् आवोगी।" लड़की चुपचाप वापस आ गई। पहली कक्षा की अध्यापिका ने कहा कि कल तुमको पाठ पढ़ाऊंगी, माता जी को कहना तुम्हें "वाल वोध" ले देंगी।

पाठशाला वन्द होने पर सत्यवती अन्य पुत्रियों के साथ घर चली गई और माता से कहा कि आज स्वाहा-स्वाहा नहीं हुआ। अव मैं प्रतिदिन घर पर स्वाहा-स्वाहा करके जाऊँगी।

पिताजी भोजन के समय आगये। उन्होंने पूछा, सत्यवती! पढ़ आई? वह वोली, पोथी ले दो। वहां स्वाहा-स्वाहा नहीं हुआ। मैं कल से घर में करके जाऊँगी, वहां आठवें दिन स्वाहा होता है।

पिता थे तो धर्मात्मा और रईस। कुछ कमी न थी परन्तु प्रमाद का अवगुण था। अव सत्यवती की माता से कहा—अव वोलो, अव तो यज्ञ करोगी? पुरोहित सत्य कहता था "पुत्री बड़ी भाग्यवती है, अच्छे संस्कारों की है" इसके प्रताप से हम भी भगवान् के चरणों में लग जावेंगे। अव समय आगया है हमारे जीवन का काँटा बदलने का।

देवी—जरूर-जरूर करूंगी।

पति—रविवार अवकाश का दिन होता है, नवीन कार्य करना है, उसी पुरोहित को बुलवा कर आरम्भ करें। कुछ समझा भी जावेगा और विधि भी वता जावेगा। प्रसाद भी वना लेंगे।

शुभ कार्यों में विलंब क्यों?

सत्यवती थी तो अनजान वच्ची परन्तु उसके कान पिता की वातों में लगे हुए थे। वोली—मैं तो कल ही करूंगी।

पिता ने बहुत समझाया कि हम तो इस कार्य में अनभिज्ञ, हैं; कैसे करेंगे। रविवार भी दूर नहीं, दो-तीन दिन ही तो अव शेष हैं।

पुत्री रो पड़ी और रूठ गई। कहा, मैं तो अपने आप ही स्वाहा करती रहूँगी।

माता—करना है तो फिर रविवार तक क्यों रखें। आज पुरोहित को कह आवें, वह सब सामान लावेगा अथवा ले देगा

और कल ही से वह आकर करादे और समझा दे। सत्यवती यह सुन प्रसन्न होगई। पिता ने कहा, अच्छा तो कल से ही करेंगे। शुभ कार्य में विलम्ब क्यों हो ?

पुरोहितजी बड़े दयालु स्वभाव के थे। उन्हें कहने की देर थी। उन्होंने कहा --राव साहिब ! हवन-कुण्ड लोहे का तो मैं अपना भी दे सकता हूँ, यदि आपको केवल कल ही कराना हो और यदि प्रतिदिन करना है तो मैं चलकर आप गृह पर भूमि में हवनकुण्ड खोद कर बना देता हूँ। आप सद्गृहस्थी हैं आप सब सामान अपना ही बना लें। आप को कमी तो है नहीं।

राव साहिब—बहुत अच्छा।

अब प्रतिदिन हवन करना तो है ही अतः वह बाजार से सामग्री, चन्दन की समिधा और ताम्र के सब यज्ञ-पात्र खरीद कर पुरोहित-जी के साथ घर आगए और फिर वहां पुरोहित जी ने हवन-कुण्ड खोदा।

सत्यवती--पाठशाला में भी ऐसा ही बना हुआ है।

प्रातः हुई। पुरोहित जी आ गए। उन्होंने सब वस्तुओं तथा पात्रों के रखने की विधि तथा सामग्री में घृत मिलाने की मात्रा और विधि बता दी और प्रार्थना आदि विधि सहित यज्ञ कराया। साथ-साथ अर्थ भी समझाते गए।

स्वर्ग की सीढ़ियाँ

और बातें तो सत्यवती की समझ में न आईं, संभव है उसके माता-पिता ने भी न समझी हों। सत्यवती ने एक बात गाँठ बाँध ली जब पुरोहित जी ने समझाया कि जिन लोगों को स्वर्ग की कामना हो वह यज्ञ किया करें। "स्वर्ग कामो यजेत"। और कहा कि जब सामग्री डाली जाती है और स्वाहा कहा जाता है तो अग्नि ऊपर को उठती है और कहती है--हे यजमान ! देख मैं ऊपर को जा रही हूँ तेरे लिए ऊपर-ऊपर स्वर्ग की सीढ़ियां बनाती जाती हूँ, तुम को वहां ले जाऊँगी।"

सत्यवती स्वर्ग का नाम सुनकर बहुत खुश हुई।

राव साहब—पण्डितजी ! आप कई दिन निरन्तर हमारे गृह पर आकर हम से यज्ञ करावें, ताकि हमें पूर्ण विधि आजावे और मन्त्र भी याद हो जावें।

पुरोहित—तथाऽस्तु । तब राव साहिब ने पुरोहितजी को अच्छी प्रकार आदर सत्कार सहित विदा किया ।

पुत्री अब पाठशाला में मन लगा कर पढ़ने लगी । हवन प्रतिदिन घर पर करती । हवन-कुण्ड में ही ध्यान जमाए रखती । फिर आठवां दिन आया और पाठशालामें हवन यज्ञ होने लगा । सत्यवती दौड़ कर आगे-आगे जा बैठी । हवन मन्त्र उसे जल्दी याद हो गए । यहां तो बड़ा हवन था । बहुत पुत्रियां आहुति देने वाली थीं । अग्नि भी बड़ी प्रचण्ड होती । घर पर नित्यकर्म होता था । अब यहां ज्योंही बहुत सी आहुतियां और घी पड़े तो तत्काल अग्नि की ज्वाला ऊपर को भड़कती, धुआं भी जाता । सत्यवती ज्वाला और धुएं के ऊपर चढ़ने को देखती रहती । सहसा सत्यवती ने उस अध्यापिका से, जो पहले दिन उससे प्यार से बोली थी उसकी ओर मुख करके कहा । "हमारी स्वाहा स्वर्ग की सीढ़ियाँ बनाता चला जा रहा है ।" अध्यापिका बालिका को अज्ञानी समझ कर, सुनकर चुप रही । फिर ज्वाला उठी तो फिर सत्यवती ने उसकी ओर मुख करके वही कहा । तब भी अध्यापिका चुप रही । तीसरी बार सब लड़कियों से कहा, बहिनो ! बहिनो ! देखो ! देखो ! यह सामने ऊपर स्वर्ग की सीढ़ियां बनती चली जाती हैं । लड़कियां हंस पड़ीं । सबने ऊपर भी देखा और कहा "बावली । यह तो धुआं है ।" सत्यवती रो पड़ी । अध्यापिका ने कहा नहीं पुत्री ! क्यों रोती हो ! लड़कियों को ज्ञान नहीं । ऐसा शास्त्रों में लिखा हुआ है कि स्वाहा स्वर्ग की सीढ़ियां बनाता चला जाता है । मुझे भी दिखाई नहीं दिया । सचमुच तुम को ऐसा प्रतित हुआ "

सत्यवती बोली, बिल्कुल ठीक नजर आया ।

अध्यापिका बेचारी आस्तिक तो थी, श्रद्धालु भी; परन्तु न हवन करने वाली थी न इन बातों को उसने कभी विचारा था । अब सत्यवती की श्रद्धा और विश्वास बढ़ते गए । घर में भी जाकर कहा कि आज मैं स्वर्ग की सीढ़ियाँ बनाती आँखों से देख आई हूं । पुरोहितजी ठीक कहते थे ।

दूसरे दिन पुरोहितजी हवन कराने आए और सत्यवती की माता ज. ने पुरोहितजी से कह दिया, जो सत्यवती कहती थी ।

राव—भोली ! यह बात भला पुरोहित जी से करने की थी ।

सत्यवती बालिका है उसे स्वर्ग का विचार बैठा हुआ है। तुम्हारे गर्भ काल में जो कथा तुमने सुनी, वही संस्कार है और भला क्या कभी सीढ़ियाँ बनती हैं ? यह तो एक रोचक बात ऋषियों ने लिख दी कि लोग धर्म की ओर लगें और पुरोहित जी ने भी ऋषियों का ही प्रमाण देकर हमारी रुचि बढ़ाने के लिए शास्त्रों की लिखी बात सत्य मानकर कही, अपनी देखी तो किसी ने नहीं।

पुरोहित (सुनकर बोले) --राव साहिब ! एक धनी के मकान में चोर आ घुसे। उस गृह में रहने वाले कुत्ते ने देखा और भौंकना शुरू किया। दूर-दूर की गलियों में पड़े सोए कुत्ते भी जागे और उसी प्रकार का शोर मचाने लगे। सब गली मुहल्ले वाले जाग पड़े और दौड़े। चोर को घेर लिया। अब बोलो ! क्या गली के कुत्तों ने चोर को देखा था? जिस कुत्ते ने देखा और जिस स्वर में भौंका उससे बाकी कुत्ते समझ गए और बिना देखे वैसा शोर मचाने लग गए। लोगों ने समझा कि कोई चोर आ घुसा है। ठीक इसी प्रकार हमने नहीं देखा परन्तु जिन ऋषियों ने तुम्हारी लड़की की तरह साक्षात् किया, उन्होंने यही लिखा तो हम भी उसे सत्य, नितांत सत्य मान कर लोगों को बताते हैं। यह आँख देखने वाली तो सब को प्राप्त नहीं—तुम्हारी पुत्री संस्कारी है, यह पहले दिन ही मैंने कह दिया था, अब आप पुत्री को पागल समझो, स्वर्ग के पीछे उन्मत्त समझो, चाहे विश्वास करो। परन्तु मैं तो तुम्हारी पुत्री में पूर्ण विश्वास करता हूँ और उसे साधारण मत मानना। इस पर राव साहब और रानी दोनों बड़े प्रसन्न हुए और उनकी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

स्वर्गकामो जुह्यात्

दूसरा अध्याय

हृदय विदारक भजन

सत्यवती पढ़ती थी मन लगा कर और समझती बुद्धि लगा कर। रूप-रंग में सौन्दर्य था, जीवन में सरलता थी। बुद्धि अति तीव्र थी। मन बहुत निर्मल था। सरल हृदय, स्वर अति कोमल और रसीला था। एक दिन पाठशाला में देवियों ने उत्सव रचा; भजन भी हुए।

इतनेमें पुत्रियोंके संरक्षक भी आगए। अध्यापिकाएँ सत्यवती से बहुत प्रसन्न रहती थी और उससे प्रेम करती थीं। उसकी कोमल वाणी सबको प्रिय और मधुर लगती थी। एक अध्यापिका ने कहा—सत्यवती ! तू भी कोई भजन गाना जानती है। उसकी माता ने कहा एक ही भजन इसे आता है, जो मैं बोला करती हूँ, मेरे साथ बोलती है।

अध्यापिका ने कहा—सत्यवती ! बोलेगी।

सत्यवती—जी हाँ !

अध्यापिका—अकेली बोल सकोगी !

सत्यवती—जी हाँ

भजन

प्रभु अपनी विनय सुनाने को मैं आई तेरे द्वार।
मेरी पाप भरी नैया को, प्रभु कर दो भव से पार।
कई जन्मों की भटकाई,
जीवन की कदर न पाई।
विषयों से प्रीत लगाई जी, अब सुन लो नाथ पुकार।
मैं देख लिया जग सारा,
न बना कोई सहारा।
सब मतलब का परिवार जी, प्रभु करुणा हाथ पसार।
दुःख दर्द मैं किसे सुनाऊँ ?
कहीं ठौर न अपना पाऊं।
दर दर से धक्के खाऊँ जी, मेरी नैया है मझधार॥
कर जोड़ प्रभु तेरे आगे।
मेरी ज्ञान की ज्योति जगादे।
भक्ति का रंग चढ़ादे जी, है बिनती बारंबार॥
प्रभु अपनी......................

भजन क्या था, करुण आर्त्त स्वर से पूरित पुकार थी, फिर नन्ही बालिका, कोमल सुरीली वाणी, सरल हृदय से निकसित; उसने सब स्त्री-पुरुषों को रुला दिया, सबकी दृष्टि उस सत्यवती पर पड़ने लगी। सबके मन में यह आकांक्षा हुई कि हमारी कन्याएं भी उस सत्यवती की तरह बन जावें और सर्वप्रिय हों।

सत्यवती के पिता राव साहिब और माया रानी साहिबा अपने

आपको धन्य-धन्य मानने लगे। भगवान् का धन्यवाद किया और बालिका को प्यार करने लगे।

आर्य कौन है ? कैसे बनें ?

एक दिन एक उपदेशक विद्वान् आए। उन्होंने उपदेश किया कि जो वेद नहीं पढ़ता वह आर्य नहीं बन सकता। राय साहिब धर्मात्मा तो थे ही और अब हवन भी करने लग गए थे। इधर पुरोहित और सत्यवती की क्रिया ने उनमें श्रद्धा और बढ़ा दी थी। भावुक व्यक्ति थे। उपदेशक के मुख से सुनते ही विचार आया कि हम तो आयु भर आर्य न बन सकेंगे। समाप्ति के बाद उपदेशक को भोजन का निमंत्रण दिया। घर ले गए। उपदेशक महोदय हवनकुण्ड को देखकर गद-गद हो गए और पूछा कि हवन-कुण्ड में प्रतिदिन यज्ञ करते हो, अथवा कभी-कभी पर्व आदि पर अथवा पूर्णमासी या अमावस्या पर।

राव साहिब—नित्य कर्म ही प्रतिदिन करते हैं। क्या पूर्णमासी और अमावस्या का यज्ञ कोई और होता है ? पुरोहितजी तो कुछ दिन ही सिखा कर चले गए थे। पूर्णमासी-अमावस्या का हमें कोई ज्ञान नहीं।

उपदेशक—हाँ, हां। वह बृहद् यज्ञ होता है। उसकी आहुतियाँ भी जुदा-जुदा हैं और उसका लाभ स्वर्ग की प्राप्ति है।

राव साहिब—आपने जो उपदेश में कहा कि जो वेद नहीं पढ़ता वह आर्य नहीं बन सकता। हम तो अब पढ़ नहीं सकते, फिर हमारा क्या हाल होगा ?

उपदेशक—आप आर्य समाजी हैं, आर्य हैं; अतः जानते होंगे कि ऋषि दयानन्दजी ने लिखा है—'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।' धर्म ही नहीं कहा, परम धर्म कहा है।

राव साहिब—यदि पढ़ न सकें तो सुन कैसे सकते हैं ? कहीं ऐसा प्रबन्ध है ?

उपदेशक—आप धनाढ्य आदमी हैं, अपने घर में वेद यज्ञ रचा लो। पुण्य और फलियां दोनों मिलेंगे, यज्ञ भी हो जायगा और सारे वेद को सुन भी लोगे।

राव साहिब—यह तो हमारे लिए बड़ा सुगम है। फिर कब कराएं और किस से कराएँ ?

उपदेशक—कोई भी वेद का विद्वान् करा सकता है और सुना सकता है। घर पर कराओ, चाहे समाज-मन्दिर में कराओ। समाज-मन्दिर में करोगे तो समाज वाले सहयोग देंगे ऊपर का यही प्रबन्ध करेंगे। घर पर करोगे तो सब प्रबन्ध आपको स्वयं करना होगा। यदि कार्य करने और प्रबन्ध करने वाले हो तो घर पर कराओ। यदि आप अकेले हो तो समाज-मन्दिर में कराओ। समाज वालों से प्रार्थना करो, यदि वे स्वीकार करें तो वहाँ सुगमता से हो सकेगा।

राव साहिब—आप यह परामर्श दें कि कहाँ कराना अच्छा रहेगा। प्रबन्ध करने वाले कार्यकर्ता हमारे पास बहुत हैं।

उपदेशक—वेद का प्रचार करना चाहते हो तो समाज मन्दिर में कराओ। अपना सुधार चाहते हो तो अपने घर पर कराओ।

अभी राव रानी उत्तर न देने पाए थे कि सत्यवती जो बड़ी सावधानी से बातें सुन रही थी, बोल उठी—पिताजी ! अपने घर करो। मैं भी सुनूंगी, आहूति दूंगी, गृह कार्य भी करूंगी, माताजी की सहायता भी करूंगी; पाठशाला से अवकाश ले आऊँगी।

उपदेशक महोदय को लड़की की बात बड़ी प्यारी लगी और उसने कहा—"बस बस, जो बच्ची कहती है वैसा करो।"

राव साहिब—कितने दिन लगेंगे।

उपदेशक—यह तो नहीं पूछा कि कितना व्यय आयगा, दिनों का पूछते हो ?

राव साहिब—भगवान् ! धन तो भगवान् का दिया हुआ है जो लग जायगा, चिन्ता नहीं। हाँ, कार्य-व्यवहार वाले हम लोग हैं उतना समय निकाल भी सकें।

उपदेशक—तो तुम पहले यजुर्वेद का यज्ञ करालो, एक सप्ताह अथवा दस दिनों में आसानी से हो जायगा। फिर यदि रुचि बढ़े, मन चाहे तो धीरे-धीरे समय देकर दूसरे वेदों का भी करा लेना।

राव साहिब—अब यह बताओ किससे कराना अच्छा रहेगा, जो हमारा सुधार भी करे और हमको समझाता भी जाए, बेगार न काटे।

रानी—अपने पुरोहितजी जो हैं। घर के आदमी हैं, देखे-भाले

हैं। सरल स्वभाव, विद्वान् भी हैं, हमारा हित भी बड़ा करते हैं। हमारे दोष त्रुटियों का वह दयालु स्वभाव से सुधार भी करते जावेंगे। यदि बाहर से किसी अपरिचित को किसी के द्वारा बुलाया भी, विद्वान् तो वह होगा, वह तो आज्ञा करेगा, विधि बतायेगा। हम से कोई त्रुटि हो गई वह रुष्ट हो जाएगा।

उपदेशक—पुरोहितजी बहुत अच्छे विद्वान् हैं, वह भक्त भी हैं। यज्ञों में श्रद्धा भी रखते हैं उनसे ही करा लेवें बात निश्चित हो गई। सत्यवती अब १० वर्ष की हो गई थी। पांचवीं श्रेणी तक पहुंच गई थी।

यज्ञ की तैयारी

उपदेशक महोदय ने जब समाज-मंदिर में कथा व उपदेश किया तो राव साहिब के गृह में होने वाले यज्ञ की चर्चा करते सुना दिया कि आर्यो ! तुम्हें अति उत्तम अवसर बिना किसी दाम व्यय किए मिल रहा है। तुम सब ऋषि के इस नियम का पालन करना कि वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। इतने वर्ष हो गये तुम्हारी समाज को स्थापित हुए, तुमने कभी वेद की पुस्तक भी न देखी होगी। आप के पुरोहित जी ही यज्ञ करावेंगे।

मन्त्री—हम बिना निमन्त्रण के किसी के गृह में कैसे जावेंगे ? प्रत्येक को अपना मान अभीष्ट है समाज-मन्दिर में होता तो सब को बिना निमन्त्रण आने का अधिकार था

उपदेशक—इस मान-शान के अभिमान ने ही तो हम आर्यों को लोगों के घरों में घुसने से रोके रखा। बाबा ! तुम किसी पर मिन्नत लगाने थोड़े जाओगे अपना ही आत्मकल्याण करने जाओगे। क्या सौदा बेचने (जिन्स बेचने) वाले तुम्हें बुलाते हैं ? रुपये भी खर्च करते हो, यात्रा वा कष्ट भी सहन करते हो और माल खरीद करके अपने लाभार्थ जाते हो कि नहीं ? यह भी आत्म कल्याण के लिए की गई खरीद ही समझो। तुम्हारा बिगड़ेगा क्या ? पहले तो वह सब को निमन्त्रण देंगे ही। यज्ञ का कार्य बड़ा कठिन कार्य है। बिना सहायता के सम्पन्न नहीं हो सकता और बिना जनता की उपस्थिति के प्रचार भी नहीं हो सकता परन्तु आप लोग अपने अन्दर से यह झूठा मान प्रतिष्ठा का भाव निकाल दो, अपितु जाकर सहयोग

करो और कहो कि राव साहिब ! यज्ञ के लिये किसी भी सहायता सेवा की आवश्यकता हो तो हम उपस्थित हैं। विरादरी की मर्यादा पालनार्थ विवाह अथवा शोक के अवसर पर दौड़े-दौड़े जाते हो यह भी मर्यादा समझो। इससे संगठन बढ़ता है।

सब कहने लगे, "पंडित जी ! ठीक है, हम ऐसा ही करेंगे ! राव साहिब हमारे ही तो हैं।"

तैयारी करते-करते कई दिन हो गये। राव साहिब ने सब को निमन्त्रण भी दिया और नगर में घोषणा भी करवा दी कि सब लाभ उठावें।

पुरोहित जी ने दूसरों की सहायता से बड़ा हवन कुण्ड बनाया। यज्ञशाला कच्ची सी बनाई, वेदी तैयार की।

शुभ मुहूर्त आ गया। यजुर्वेद का यज्ञ आरम्भ हुआ। राव, रानी यजमान वन कर बैठे। यज्ञ की वेदी सजाई गई। यजमान अलंकृत वन कर बैठ गये। सत्यवती और उनके कई सम्बन्धी मित्र आहुति देने के लिए नियत हुए। पुरोहित जी ने सत्यवती को यज्ञोपवीत धारण कराया, पहले सब संस्कार भी उन्होंने कराये थे। आर्यसमाजियों ने प्रबन्ध का कार्य अपने हाथ में ले लिया। पुरोहित जी वेद मन्त्र पढ़ते, स्वाहा पर आहुति दिलवाते। सत्यवती प्रति बार स्वाहा पर आकाश में देख लेती। उचित-उचित स्थान पर पुरोहितजी मन्त्रों की व्याख्या करते, उपदेश सुनाते जाते थे। लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ने लगा। सब आर्य दत्त-चित होकर मन्त्रों को सुनते। कुछ दिनों के बाद १५वाँ अध्याय (यजमान के लिए स्वर्ग) आगया।

यजमान के लिए स्वर्ग

बीच में पाँच मन्त्र ऐसे आगए जिन पर सत्यवती बोल पड़ी कि पुरोहितजी ! यह स्वर्ग लोके और 'यजमान' का शब्द बार-वार कैसा आया है क्योंकि इन शब्दों को सुनते ही मेरे रोमांच हो जाते हैं। इस पर पुरोहितजी ने सब के अर्थ पढ़ कर सुना दिये। वह मन्त्र १० से १४ तक थे। दसवें मन्त्र का ऋषिकृत अर्थ यों सुनाया :—

हे स्त्री! तेरा स्वामी जैसे जिसके अग्नि आदिक प्रकाशमान अधिष्ठाता हैं वैसे ही तू पूर्व दिशा के समान रानी है। जैसे वज्र आदि शस्त्र-अस्त्रों का प्रत्यक्ष धारणा कर्ता विद्युत् भूमिस्थ और सूर्य

रूप से तीन प्रकार वर्त्तमान स्तुति युक्त गुणों से सहित महा विद्युत् धारण करने वाली है वैसे तुझको तेरा पति मैं धारण करता हूं। तू भूमि पर पीड़ा न होने के लिए प्रसंशनीय घृत आदि पदार्थों को धारण कर। प्रतिष्ठा के लिए रथ आदि से तारने वाले सिद्धान्त कर्म को धारण कर। जैसे आकाश में बिजली का लेश सम्बन्ध और महापुरुषार्थ से विद्वानों में पूर्व हुए वेदार्थवित्, विद्वान् तुझ को शुभ गुणों से विशाल बुद्धि करें। और जैसे यह विविध रीति से धारणकर्त्ता तेरा पति तुझ से वर्ते वैसे उसके साथ तू वर्ता कर और जैसे सब अच्छे विद्वान् लोग अविद्यमान दुःख के मध्य में जो स्वर्ग अर्थात् अति सुख प्राप्ति दर्शनीय है उसमें तुझ को और तेरे पति को स्थापन करें, वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष वर्ता करो।"

गृहस्थ आश्रम का परिचय

सब अर्थों को सब जन ध्यानपूर्वक सुनते रहे और सत्यवती भी प्यार से सुनती रही। बालिका थी; सब शब्दों की तो उसे समझ न आई, अन्त में शब्दों की कुछ समझ आई। इस भोली-भाली सीधी-सादी बच्ची को यह भी समझ न थी कि पति-पत्नी किसे कहते हैं, बोल उठी, "पुरोहितजी ! पति स्त्री कौन होते हैं ?"

पुरोहितजी ने राव रानी की ओर संकेत किया, जैसे यह हैं।

सत्यवती—यह तो मेरे माता-पिता बैठे हैं। पति-स्त्री कैसे होंगे ? सब हंस पड़े।

पुरोहितजी—तो आप ही पूछ लें माता-पिता से।

राव-रानी—हाँ पुत्री !

रानी—देख ! यह जो तेरे पिता जी हैं, मेरे पति हैं, स्वामी हैं और मैं इनकी पत्नी हूं, स्त्री हूं।

सत्यवती ने माता से कहा, तुम क्यों पति-पत्नी बने ? क्या तुम्हारे माता-पता इस गृह में न थे जैसे तुम दोनों मेरे माता-पिता यहाँ मेरे साथ रहते हो।

रानी—पुत्री ! मैं भी तुम्हारी तरह कन्या थी। मेरे माता-पिता का घर यहां से दूर दूसरे नगर में है। मैं जब बड़ी हुई तो मेरा विवाह तेरे पिता के साथ हो गया। मैं अपने माता-पिता के घर से इस घर में आ गई। कन्यायें पराये घर के लिए होती हैं। माता-पिता उनको पाल-पोस, पढ़ा-लिखा योग्य बना उनका विवाह कर

देते हैं,। वह फिर अपने पति के घर स्वामिनी बन कर सुख भोगती हैं।

सत्यवती—तो क्या मुझे भी पाल-पोस, पढ़ा-लिखा, योग्य बना कर घर से निकाल दोगी ?

राव—नहीं पुत्री ! निकाल नहीं देंगे, अपितु बड़े सम्मान और बाजे-गाजे से विवाह करके बरात के साथ विदा करेंगे।

सत्यवती—मैं तो अपने घर से बाहर नहीं जाऊँगी।

रानी—पुत्री ! कन्याओं को कोई माता-पिता घर में नहीं रख सकता। राजा भी नहीं रख सकता। कन्याएं स्वर्ग की स्वामिनी होती हैं। वह अपना स्वर्ग आप बनाती हैं। सब कन्याओं का आदि सृष्टि से विवाह होता चला आया है।

सत्यवती—यदि मेरा भी विवाह आप को जरूर करना है तो मैं तो स्वर्ग लोक में विवाह करूंगी, मैंने स्वर्ग लोक में जाना है। स्वर्ग को अपना घर बनाना है। आप तो अपने लिए स्वाहा-स्वाहा सीढ़ियाँ बना रहे हैं स्वर्ग की, मैं भी आपके साथ स्वर्ग को ही चलूंगी।

पुरोहितजी ने बच्ची की बेसमझी की बात जान उसे कहा, "अच्छा पुत्री ! जैसा तू कहेगी, वैसा करेंगे। अब आगे का यज्ञ करो।"

सत्यवती—पुरोहितजी ! मुझे भी वेद पढ़ना सिखाओ, मैं भी पढ़ा करूं।

वेद का पवित्र यज्ञ समारोहपूर्वक निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। पूर्ण आहुति हुई। नगर के लोगों ने भी पूर्ण आहुति में भाग लिया। सब लोगों में यज्ञ के प्रति श्रद्धा बढ़ गयी। जो आर्यसमाज के नाम से भय खाते अथवा चिढ़ते थे, उन्हें आर्य-समाज से प्यार हो गया। पुरोहितजी ने वेद से बड़ी मार्मिक बातें बताईं और सत्यवती को समझाया कि अब तो छटी कक्षा में चढ़ गई; संस्कृत का विषय ले ले। इसके पढ़ने से तुम्हें वेद भी शीघ्र पढ़ना आ जावेगा।

सत्यवती थी तो छोटी बच्ची परन्तु तीव्र और भाव को ग्रहण करने की बुद्धि वाली थी। भगवान् ने उसको सरल स्वभाव और भोला-भाला बनाया था जिससे संसार का कोई आकर्षण उसे प्रभावित नहीं कर सकता था। ●

नया वैदिक साहित्य

लेखक—श्री पं० शिवकुमार शास्त्री, काव्य, व्याकरण तीर्थ, संसद् सदस्य । मूल्य १)५०

१. धरती का स्वर्ग : गृहस्थाश्रम

पं० शिवकुमार जी शास्त्री आर्यसमाज के पुराने महोपदेशक रहे हैं। पिछले ३० वर्षों के अपने अनुभवों को उन्होंने "धरती का स्वर्ग" नामक पुस्तक में प्रस्तुत किया है।

गृहस्थाश्रम को कैसे स्वर्ग बनाया जाए? इस विषय में शास्त्रीजी का मार्गदर्शन सभी के जीवन को नयी प्रेरणा देने में समर्थ है।

पुस्तक का मूल्य लागत मात्र १) ५० है।

२. वैदिक गृहस्थाश्रम—पं० विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड की महान् कृति : विवाह पर भेंट के लिए। कपड़े की जिल्द का मूल्य ६)

३. धर्म का सार—स्व० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय लिखित यह पुस्तक प्रचार के लिए अत्यन्त उपयोगी है। साधारण व्यक्तियों को समझाने के लिए इसे ६ कथाओं में प्रस्तुत किया गया है। मूल्य १),

४. महान् दयानन्द मूल्य १)५०

महर्षि दयानन्द को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखते हुए पं० शिवदयालु जी ने इस अनमोल पुस्तक में प्रस्तुत किया है।

५. आदर्श परिवार—मूल्य ६० पैसे।

राजस्थान के भूतपूर्व मंत्री श्री युगलकिशोर द्वारा लिखित यह पुस्तक प्रचार व विवाह आदि में बांटने के लिए विशेष उपहार है।

६. प्रभु के चरणों में मूल्य १.५०।

प्रसिद्ध विद्वान् पं० हरिशरण जी द्वारा सामवेद के कुछ मंत्रों की सरल व्याख्या प्रार्थना रूप में प्रस्तुत की गयी है। मन्त्रों को पढ़ते हुए साधक भाव विभोर हो जाता है।

७. वन्दना के स्वर मूल्य ८)

संपादक—श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' डीलक्स संकरण १५)

अधिक से अधिक मंगाएं : बांटें

जन-ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली-५

सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी मनाइए

[सस्ते सुन्दर सत्यार्थ प्रकाश तैयार हैं]

१ शताब्दी संस्करण पुस्तक साइजब
वढ़िया कागज पर २०० सैकड़ा

२ प्रचार संस्करण बड़ा साइज
वढ़िया कागज पर २५०) सैकड़ा

३ राज संस्करण बड़ा सजिल्द
वढ़िया कागज पर ३५०) सैकड़ा

४ उपहार संस्करण कपड़े की जिल्द
चिकने कागज पर ५००) सैकड़ा

५ मोटे अक्षर का बड़ा सुनहरी जिल्द मूल्य ५१) रियायती ३१)

६ सर्वश्रेष्ठ आर्ट पेपर पर मूल्य १०१) रियायती ६१)

संस्कार विधि—

१ वड़ा साइज सजिल्द ४००) सैकड़ा
२ बड़ा साइज अजिल्द ३५०) सैकड़ा
३ छोटा साइज अजिल्द २००) सैकड़ा
४ छोटा साइज अजिल्द ३००) सैकड़ा

ऋषि जीवनी २०० पृष्ठ मूल्य २) ।

श्रीमद्दयानन्द प्रकाश ४०० पृष्ठ मूल्य ६) सजिल्द ८)

संस्थान के नए प्रकाशन

१. आर्याभिविनय
काव्यमय व्याख्या अजिल्द १.५० ।

२. वैदिक गृहस्थाश्रम : सजिल्द
पं० विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड मूल्य ६ रु०

३. वैदिक गीता (पद्यानुवाद) मूल्य १ रु०

४. दयानन्द चित्रदर्शन मूल्य २० रु०
किन्तु प्रचार के लिए अभी मूल्य १५ रु०

५. संस्कार विधि :
राज संस्करण बड़ा साइज, कपड़े की जिल्द मूल्य ६ रु०
सादी अजिल्द, मूल्य ५ रु०

शीघ्र मंगाइए

जन-ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली-५

परिवार नियोजन के कुछ ठोस उपाय

जनसंख्या की वर्तमान स्थिति तथा इसमें निरन्तर वृद्धि से लोगों के यथोचित विकास एवं भरण पोषण को ध्यान में रखते हुए सरकार विशेष चिन्तित है। निस्संदेह यह सत्य भी है कि जनसंख्या में अनुपात से अधिक वृद्धि राष्ट्र की प्रगति में बाधक है। अतः सरकार ने परिवार को नियोजित करने का जो विचार रखा है वह सभी के हित में है। क्योंकि बिना इसके राष्ट्र के सारे विकास-कार्य ठप्प हो जाते हैं।

लेकिन परिवार नियोजन की वर्तमान विधि पर होने वाले आर्थिक खर्च आदि पर दृष्टिपात करते हुए इसका कोई दूसरा उपाय भी होना चाहिए। इसके लिये हमें दृढ़चित्त होकर पहले यह सोचना होगा कि यह वृद्धि हो क्यों रही है ? यह कोई भौतिक परिवर्तन तो है नही, जो केवल भौतिक उपायों से ही रोका जा सके। इसका सम्बन्ध जीवित प्राणी से है ओर प्राणी भी वह जो सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ होने का दावा रखता है। इस पर भी ऐसा सुना जाता है कि मानव विकास की ओर बढ़ रहा है। कहीं इस तथाकथित नवीन विकास में ही तो कोई ऐसी चीज नहीं है, जो इस प्रकोप में सहायक हो। मेरे विचार से वासना वृत्ति में वृद्धि ही इसका मुख्य कारण है और वासना वृत्ति का सीधा सम्बन्ध मन से होता है तथा मन बनता है अन्न से। कहा भी है 'जैसा खाये अन्न वैसा बने मन।'

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हमको इस विकसित मानव के आहार-विहार पर विचार करना होगा। अभी कुछ दिनों पूर्व बाजार में विरले दुकानदार ही गुप्त रूप से अण्डों को रखते थे और खरीदने वाले भी नौकर या किसी दूसरे व्यक्ति से मंगाते थे। क्योंकि हमारा समाज इसे घृणा की दृष्टि से देखता था लेकिन जब से कतिपय डाक्टरों ने इसे साक्षात् विटामिन का रूप घोषित किया है तब से दुकानदार तो क्या रेलवे स्टेशन, बस अड्डे और गली-गली में ठेले वाले ऐसे घूमते हैं जैसे कहीं मूंगफली बेचते हों। क्या कभी समझदार लोगों ने विचार किया है कि भारत जैसे गर्म देश के निवासियों पर ऐसी चीजों का क्या प्रभाव होगा ? क्या वास्तव में ये उत्तेजक नहीं हैं ? प्राचीन मान्यताओं के आधार पर यहाँ तो भोजन में अधिक मसालों का प्रयोग भी वर्जित है।

दूसरी चीज जो आधुनिकता का प्रतीक कही जाती है, जो आये दिन छोटी-छोटी महफिलों में देखने को मिलती है तथा कुछ पेयों में भी मिलाई जाती है वह है बुद्धि विनाशिनी शराब। आज इसने अनेक नवयुवकों के मन को मोह लिया है। क्या वास्तव में यह शारीरिक व मानसिक रूप से उत्तेजक नहीं है ?

इसने जो कमी छोड़ी वह पूरी कर दी खातिरदारी ने, जो लगभग सर्वत्र एक सामान्य रिवाज ही बन गई है और उसे नित्य प्रति की खुराक भी कह सकते हैं — वह है चाय एवं धूम्रपान। अब आप ही विचारिये जो व्यक्ति नित्यप्रति विष खाने और धुआँ ही पीने का आदी हो गया हो उसका आप क्या उपचार करेंगे ? तथा-कथित आधुनिकता में विशेष सहायक एवं प्रेरणा के स्रोत हैं अश्लील उपन्यास और सिनेमा जो लोगों को दिन में तो दूर रहा रात को भी चैन से सोने नहीं देते। इसी प्रकार के और भी बहुत से तत्त्व हैं, जो कि वासना वृत्ति में सहायक सिद्ध होते हैं।

अत: इन सब बातों को देखते हुए खेद की बात है कि हम पूर्ण नशाबन्दी लागू करने में तो असमर्थ हैं लेकिन पूर्ण नसबन्दी के लिये उत्कंठित हैं' इसका मतलब है कि विषैले वृक्ष की जड़ को न काटकर, उसके फलों को नष्ट करने पर तुले हैं।

उचित यही है कि हमें ठंडे दिमाग अर्थात सात्त्विक बुद्धि से सोचें। तब हमें यह मानने को बाध्य होना पड़ेगा कि परिवार नियोजन का यदि कोई स्थायी साधन सम्भव है तो वह है 'आत्मसंयम' और आत्म संयम आयेगा आध्यात्मिक ज्ञान से, जिसके लिये भारत विश्व का गुरु रहा है। इसे छोड़ने के कारण ही तो यह सब देखना पड़ रहा है। आज चारों ओर शिक्षा में आमूल परिवर्तन की चर्चा सुनने में आ रही है। कहा जा रहा है कि शिक्षा को व्यावसायिक बनाया जाय ताकि बेकारी समाप्त हो। समय को देखते हुए बहुत जरूरी भी है लेकिन केवल मात्र व्यावसायिक बनने से शिक्षा जीवन में सुख एवं शान्ति नहीं ला सकेगी। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है नैतिकता की, जिसके लिये हमारी सरकार को वर्तमान कदम (आपातकालीन स्थिति की घोषणा) उठाना पड़ा है। इसके लिये महात्मा गांधी ने अपनी शिक्षा नीति में कहा था कि 'नैतिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाय।' इसी के अभाव में राष्ट्र को अराजकता एव भ्रष्टाचार का मुंह देखना पड़ा।

नैतिक शिक्षा से ही हमें अपने जीवन तथा जीवन के लक्ष्य के बारे में ज्ञान हो सकता है, जिससे हमें सफल जीवन का निश्चित मार्ग दर्शन प्राप्त होगा। आज हमारे जीवन की कोई निश्चित दिशा नहीं और यह है वर्तमान शिक्षा एवं उसकी प्रणाली का दोष। अत: सबसे बड़ी आवश्यकता है शिक्षा में व्यावसायिकता के साथ-साथ **अनिवार्य नैतिक शिक्षा व नवीन पाठ्यक्रम के आधार पर गुरुकुल प्रणाली** को लाने की। तभी हमारे अन्दर आत्म संयम की भावना जागृत होगी और हम पूर्ण नशाबंदी में समर्थ होंगे, जो कि आर्थिक रूप से भी राष्ट्र के हित में है। सच तो यह है कि हमारे अंदर आत्महीनता की भावना इतनी दृढ़ हो गई है कि हम विदेशी दूषित विचारधारा को ग्राह्य तथा अपनी उपयोगी एवं श्रेष्ठ विचारधारा को भी केवल आदर्श कहकर त्याज्य मानने लगे हैं। हमें इस वृत्ति को त्याग कर सर्वप्रथम सही अर्थों में शारीरिक व मानसिक रूप से भारतीय बनना होगा। मेरा नम्र सुझाव यही है कि सरकार के वर्तमान विचार एवं कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए हम पहले अपने आहार व रहन-सहन पर विचार करें और फिर 'सादा जीवन उच्च विचार' के आदर्श को ध्यान में रखते हुए सभी नशीले पदार्थों का पूर्ण त्याग करें। तभी अपना और अपने राष्ट्र का हित सम्भव है। ★

रामलाल कपूर ट्रस्ट
का
विशिष्ट प्रकाशन

आज ही आदेश
भेजकर
अपनी प्रति
सुरक्षित करालें

° ° °

ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य, सत्यार्थप्रकाश—संस्कार विधि, १४ लघु ग्रंथों का संग्रह आदि ग्रंथों के **विशिष्ट, सुन्दर, शुद्ध एवं प्रामाणिक संस्करण** समान आकार में छापे हैं। प्रत्येक ग्रन्थ के साथ सम्बन्ध रखने वाली १०-१२ सूचियाँ अन्त में दी हैं। इन सूचियों से इन संस्करणों का महत्व बहुत बढ़ गया है। निम्न ग्रन्थ छप चुके हैं।

१—**ऋग्वेदभाष्य** (संस्कृत हिन्दी) वेद विषयक सहस्रों टिप्पणियों के सहित भाग १-३०-००, भाग २-२५-००, भाग ३-३०-००। आगे छपाई चालू है।

२—**सत्यार्थप्रकाश**—नवीन परिष्कृत द्वितीय संस्करण। मूल्य (१२५० पृष्ठ) २४-००, राजसंस्करण ३०-००।

३—**संस्कारविधि**—मूल्य १०-००, राजसंस्करण १२-००।

४—**दयानन्द लघु ग्रंथ संग्रह**—१४ ग्रन्थों का अपूर्व संग्रह एवं सम्पादन। मूल्य २०-००।

५—**उणादिकोष**—ऋषि दयानन्द की स्वरचित वृत्ति, १२ प्रकार की सूचियों के सहित। मूल्य ७-००, सजिल्द १०-००।

६—**ध्यानयोग प्रकाश**—स्वामी लक्ष्मणानन्द कृत। मूल्य ८-००।

७—**महाभाष्य**—(हिन्दी व्याख्या सहित) व्याख्याता—पं० युधिष्ठिर मीमांसक। मूल्य—भाग २, २५-००, भाग ३, २५-००।

७० पुस्तकों का बृहत्सूचीपत्र बिना मूल्य मंगवावें।

रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत)

क्या आप
अपने
परिवार
में
प्रभु की
अमर
वाणी
वेद
नहीं
लाएंगे
?

अधिक से अधिक सत्यार्थ-प्रकाश बाँटें

मूल्य : २००) सैंकड़ा । २५०) सैंकड़ा ।
३५०) सैंकड़ा । ५००) सैंकड़ा :

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार की
औषधियां प्रयोग करें

गुरुकुल कासारि

खाँसी की अपूर्व गुणकारी औषधि

उपयोग किसी भी कारण से हुई खाँसी, नजला, जुकाम आदि में लाभदायक है।
सेवन विधि दिन में तीन बार छोटी चम्मच लेकर उंगली से चाटें।

आँखों के अनेक रोगों के लिए

संसार प्रसिद्ध

भीमसेनी सुरमा

च्यवनप्राश

उत्तम स्वादिष्ट रसायन

शरीर को बलिष्ठ और कान्तिमय बनाता है।

**शारीरिक क्षीणता एवं फेंफड़ों के लिए प्रसिद्ध
आयुर्वेद रसायन**

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी

पो० गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (सहारनपुर)

शाखा कार्यालय—चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

—रत्नाकर

सृष्टि उत्पत्ति काल समस्या

'जन ज्ञान' साप्ताहिक ९ मई के अंक में सृष्टि उत्पत्ति काल समस्या पर सिद्धान्त चर्चा में सिद्धान्ती जी ने जो उत्तर दिया है वह संतुष्टि कारक नहीं है।

(१) महर्षि लिखित सृष्टि संवत् (१९६०८५३०७७) को सही मान कर आपने उत्तर दिया पर यही संवत् क्यों सही है इसका आपने कोई प्रमाण नहीं दिया। यह तो एक ऐसा उत्तर है जैसे कि कट्टर मुसलमान भाई कह देते हैं —"अरे मियाँ कैसे मुसलमान हो यकीन ही नहीं करते।" स्वामी जी ने तो इसी प्रकार के अन्ध-विश्वास को समाप्त करने के लिये अपना जीवन बलिदान किया था।

आप आर्यसमाजियों को तो भले ही इस प्रकार चुप करा दें परन्तु दूसरों को क्या उत्तर देंगे। यदि यही सृष्टि संवत् सही है तो प्रमाण द्वारा सिद्ध करना चाहिए।

(२) उमाकान्त जी सृष्टि संवत् का ठोस आधार पूछते हैं पर सिद्धान्ती जी ने इस विषय को को छुआ भी नहीं।

अब मैं सृष्टि संवत् पर अपने विचार लिख रहा हूं—

(३) सृष्टि संवत् का आधार खोजने के लिये पहले चतुर्युग का आधार और मन्वन्तर का आधार खोजना होगा। और अधिकारी विद्वानों से इस विषय पर लेख मंगवाने चाहिये। संभव है विद्वान् लोग उसमें से भी कोई संकेत पकड़ लें।

यजुर्वेद ३०।१८ के अनुसार नवग्रहों का चक्र के आदि बिन्दु पर एक सरल रेखा में होना चतुर्युग का प्रारम्भ है। ये नवग्रह फलित ज्योतिष के नहीं अपितु विज्ञान संम्मत बुध से प्लूटो तक हैं।

स्वामी जी ने सिद्धांत ग्रन्थों में सूर्य सिद्धान्त को प्रामणिक माना है, अतः ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की गणना उसी के अनुसार होनी थी, किसी कारणवश मन्वन्तर के आदि में जो सतयुग प्रमाण (१७२८०००) जल प्रलय का संधि काल है उसे स्वामी जी ने मनुस्मृति के आधार पर मन्वन्तरों की वर्ष संख्या (३० क० ६७ ला० २० ह०) के अन्तर्गत ही मान लिया जबकि संधि यह काल ३० क० ८४ ला० ४८ ह० वर्ष होने चाहियें। इन सात संधि कालों का समय १ क० २० ला० ९६ ह० वर्ष सृष्टि संवत् में से हीन करने पर स्वामी जी का सृष्टि संवत् आ जायेगा।

सिद्धान्त चर्चा स्तम्भ में इस चर्चा को चलाया जाना चाहिए और अधिकारी विद्वानों से पक्षविपक्ष में लेख मंगवा कर सही निर्णय लें। यह ज्योतिष का विषय है।

(३) सार्वदेशिक सभा से प्रचारित सृष्टि संवत् १९७२९४९०७७ सारे देश में प्रचलित सृष्टि संवत् है जो कि सूर्य सिद्धान्त की गणनानुसार सही है। पंचाङ्ग कर्ता इसे कल्प संवत् ही कहते हैं।

(४) पंचांगों में अंकित १९५५८८५०७७ पूर्व संवत् से १ क० ७० ला० ६४ ह० वर्ष कम है। क्योंकि सूर्य सिद्धान्त में लिखा है कि इतने वर्ष सृष्टि निर्माण में गये। अतः निर्माण काल के वर्ष निकाल देने पर पंचागों वाला सृष्टि संवत् हा बचता है।

वास्तव में पंचाङ्गों वाले सृष्टि सं० का प्रारम्भ वह समय है जब समस्त नौ ग्रह प्रथम वार भचक्र के प्रारम्भिक बिन्दु मेष आदि में रा० अ० कला आदि स्थित होकर सूर्य की परिक्रमा करने लगे।

इसी संवत् के द्वारा सूर्य सिद्धान्त में दी हुई चतुर्युग की भ्रमण संख्या से त्रैराशिक द्वारा वर्तमान ग्रह की राशि आदि में स्थिति निकाल सकते हैं। थोड़ा अन्तर आता है उसका भी कारण है। वर्तमान पंचाङ्ग में पृथिवी को केन्द्र मानकर ग्रह स्थिति स्पष्ट की जाती है, जबकि सूर्य सिद्धान्त में निर्दिष्ट भ्रमण संख्या निश्चय ही सूर्य की ग्रहों द्वारा की जाने वाली परिक्रमा ही है और निर्दिष्ट मान मध्यम मान है जबकि ग्रहों की गति ३ प्रकार की है—कभी तीव्र, कभी मन्द और कभी मध्य। अयनांश का भी विचार राशि अंश निकालने में करना पड़ता है।

इस कारण मैं इसी संवत् को सृष्टि संवत् मानता हूं।

(५) १ क० ७० ला० ६४ ह० वर्षों की गणना भी निम्न है। यह सृष्टि संवत् हमारे सूर्य मण्डल से सम्बन्धित है। आकाशगंगा ब्रह्मांड से या दूसरे ब्रह्मांडों से सम्बन्धित नहीं है। हमारे आकाश गंगा ब्रह्मांड में १ खरब से अधिक सूर्य मण्डल हैं। हमारा सूर्य मण्डल भी इसका एक सदस्य है। आकाश गंगा की आयु भारतीय प्राचीन ज्योतिष के अनुसार ब्रह्मा की आयु के आधे वर्ष है। अर्थात् ७ नील २० खरब वर्ष से अधिक। आधुनिक विज्ञान को १ नील वर्ष के करीब {१० सहस्र अरब} अब माननी पड़ी।

आधुनिक विज्ञान सूर्य की आयु ८० खरब वर्ष के लगभग मानता है और पृथिवी की आयु ४ अरब वर्ष के करीब। १ अरब ६० करोड़ वर्ष पूर्व पृथिवी का ऊपरी द्रव ठोस अवस्था में आया। तो क्या १ अरब ८५ करोड़ वह अवधि है जब ऊपरी द्रव ठोस होना प्रारम्भ हुआ और तत्कालीन स्वारोचिष वह मन्वन्तर है जब पृथ्वी आग के गोले के सामान दहक रही थी?

मेरा विचार कुछ भिन्न है। वैज्ञानिक सूर्य मण्डल की उत्पत्ति हाइड्रोजन गैसीय नैबुला से मानते हैं। पर वेद में हाइड्रोजन से पूर्व की दो अवस्थायें हैं—अप् से ओषधि और ओषधियों से हाइड्रोजन आदि। परमाणु सृष्टि प्रकरण में ओषधि का अर्थ—इलेक्ट्रान आदि कणिकायें है। और ये कणिकायें यजुर्वेद के अनुसार देवताओं से ३ युग पूर्व उत्पन्न हुई। अर्थात् सूर्य आदि की उत्पत्ति से १ क० २९ लाख ६० हजार वर्ष पूर्व हुई। शेष ४१ लाख ४ हजार वर्ष का समय अप् तत्त्व से ओषधियों की उत्पत्ति तक का है, जिसमें एक सतयुग प्रमाण अप् तत्त्व का ही समय आता है।

प्रगतिशील नाम

डिलाईट

वर्षा उपवन व औरकार्यकुशलता के कारण आज डिलाईटपक्की अलमारियां औरफर्नीचर सारे भारत में प्रसिद्ध हैं क्योंकि यह देखने में सुन्दर, मजबूत, टिकाऊ और पक्क गां में उपलब्ध हैं। दुकान हो या घर, विवाह हो या कोई शुभ अवसर, यह सबकी शोभा बढ़ाता है।
आप भी आज डिलाईट फरनीचर खरीद कर अपने घर, आफिस व दुकान की शोभा बढ़ावें और आनन्द पावें।

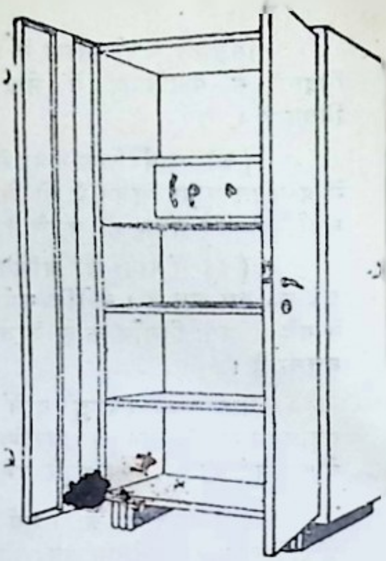

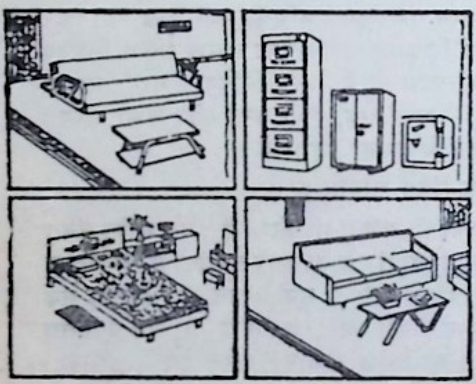

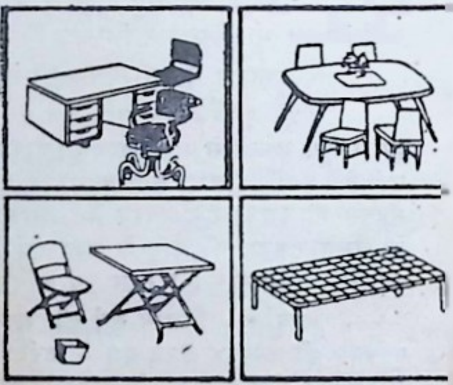

डलाईट सेफ वर्क्स

कुतुब रोड, दिल्ली-६. फोन 511380

विक्रेता

१ काटेज स्टोर, २० विनय नगर मार्कीट, नई दिल्ली।
२. काश्मीर क्राकरी हाऊस, लक्कड़ बाजार, लुधियाना।
३. मित्तल ब्रादर्स, सिरकी बाजार, भटिण्डा। ४. निहालचन्द गोपालदास, अबोहर।
५. महेन्द्रा ब्रादर्स, कोर्ट रोड, मोगा।
६. जैम सेल्स कार्पोरेशन, सेक्टर ७-सी दु० नं० ३० मध्य मार्ग, चण्डीगढ़।
७. हरयाणा आयरन एण्ड स्टील इण्डस्ट्रीज, बाजार हिसारिया, सिरसा।
८. लीला इलैक्ट्रिक कं०, ७० कोतवाली रोड, श्री गंगानगर (राज०)।
९. राणा इण्डस्ट्रीज, लाडपुरा बाजार, कोटा (राज०)
१०. आदर्श इलैक्ट्रिक एण्ड जनरल सप्लायर्ज, नैकाओली, नीमच (म० प्र०)।
११. ओवरसीज ट्रेड एजेन्सीज, केसरगंज, अजमेर।

संस्थान के नए प्रकाशन

१. आर्याभिविनय

काव्यमय व्याख्या सजिल्द २.५० अजिल्द १.५०

२. उपदेश मंजरी

महर्षि के पूना व्याख्यानों का संग्रह मूल्य १.५०

३. प्रभु के चरणों में

पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार मूल्य १.५०

४. आदर्श परिवार

पं० जुगल किशोर चतुर्वेदी
(विवाह पर बांटने योग्य पुस्तक) मूल्य ६० पैसे

५. धर्म-सार

स्व० पं० गंगाप्रसाद जी की अनमोल
रचना साधारण जनता में प्रचार के लिए मूल्य १ रु०

६. संस्कार विधि

छोटा साईज ३) सजिल्द
राज संस्करण बड़ा साईज ४) अजिल्द
कपड़े की जिल्द मूल्य ६)

७. धरती का स्वर्ग

प० शिवकुमार जी शास्त्री (सदस्य लोक सभा) मूल्य १ ५०

शीघ्र मंगाइए

दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-११०००५

जन-ज्ञान (मासिक)
१५९७. हरध्यान सिंह मार्ग
करौल बाग, नई दिल्ली-५
दूरभाष : ५६६६३९
७०१५८४

D-A.V.P. से स्वीकृत
जुलाई १९७६
श्रावण २०३३

रजि० नं०
डी०—(सी०) २०१
R.N.No. 107119/65

वीर श्रेष्ठ महाराणा प्रताप और दानवीर भामाशाह

आज इन दोनों की राष्ट्र को आवश्यकता है।